व्याकरणचन्द्रोदय

तृतीय खण्ड

(तिङन्त)

श्री चारुदेवशास्त्री

एम० ए०, एम० ओ० एल०

श्रीगान्धिचरित, अनुवादकला, प्रस्तावतरङ्गिणी, उपसर्गार्थचन्द्रिका,
वाक्यमुक्तावली, शब्दापशब्दविवेक आदि ग्रन्थों के निर्माता,
वाक्यपदीय (प्र० का०) के परिष्कर्ता तथा व्याकरण
महाभाष्य(नवाह्निक)के अनुवादक व विवरणकार

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

©मोतीलाल बनारसीदास

प्रधान कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
शाखाएँ : (१) चौक, वाराणसी (उ० प्र०)
(२) अशोक राजपथ, पटना (बिहार)

PK512
.S50
v 3

प्रथम संस्करण
१९७१
मूल्य : ४० रुपए

The
UNIVERSITY
OF CHICAGO
LIBRARY

PL 480

सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
द्वारा प्रकाशित तथा शान्तिलाल जैन, जैनेन्द्र प्रेस, बंगलो रोड,
जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा मुद्रित ।

किञ्चिद् वक्तव्य

व्याकरणचन्द्रोदय का यह तृतीय खण्ड उपस्थित किया जा रहा है। इसमें तिङन्त पद का सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण निरूपण किया है। विषयानुक्रमण प्रायः सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार हुआ है। यहाँ इतना अवश्य विशेष है कि सभी लकारों के रूप एकसाथ नहीं दिये हैं। भ्वाद्यादिगणों की धातुओं से शप् आदि गण-कार्य होने से लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् के रूप एकत्र दिये हैं। लुट्, लृट्, लृङ् में कर्तृवाची सार्वधातुक तिङ् परे शप् आदि का अपवाद तास् और स्य प्रत्यय होते हैं, जो आर्धधातुक हैं। लुङ् में लावस्था में ही च्लि प्रत्यय होता है, जिसे सिच् अङ् आदि आदेश हो जाते हैं जो आर्धधातुक हैं। सिच् आदि आने पर धातु से कर्तृवाची सार्वधातुक नहीं रहता, अतः शप् आदि की प्राप्ति नहीं रहती। आशीर्लिङ् तथा लिट् के आदेश-भूत तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा की है, अतः यहाँ भी कर्तृवाची सार्वधातुक न होने से शप् आदि नहीं होते। फलतः लुट्-प्रत्ययान्तादि शब्दों की रूप-रचना में धातु किस गण की है, इसका विचार नहीं करना होता। अतः हमने प्रत्यय और प्रत्ययार्थ के साम्य को लेकर लुट् आदि तीन लकारों का निरूपण एक प्रकरण में किया है। आशीर्लिङ् तथा लिट् का निरूपण दो भिन्न-भिन्न प्रकरणों में किया है।

इस पृथक्करण से विषयप्रतिपादन अभिव्यक्ततर हो जाता है। लुट् आदि के रूपों में इडादि व्यवस्था विशद व सुबोध हो जाती है। लुङ् के निरूपण में अङ् सिच् आदि प्रत्ययों का विषय-विभाग दिखाते हुए उस-उस धातु के लुङन्त रूप दिये हैं। प्रायः व्यवहारावतीर्ण सभी धातुओं के लुङन्त रूप दिये हैं। सिचि वृद्धि, हलन्त-लक्षणा वृद्धि, हलन्तलक्षण-वृद्धि-प्रतिषेध, इडादि सिच्परक वैकल्पिक वृद्धि, नित्यवृद्धि, वृद्ध्यपवाद-गुण, गुण-निषेध आदि शास्त्रीय कार्यों को क्रमबद्ध करके निर्दशित किया है।

आशीर्लिङ् अल्पप्रयोगतर है, अतः इसे लिट् के पीछे रखा है। यहाँ दीर्घ, ह्रस्व, आत्व, एकारान्तादेश, वैकल्पिक एकारान्तादेश, उपधा-न-लोप, इदित्-निमित्तक न-लोपाभाव, गुण, गुणाभाव, रिङादेश, इर् उर् अन्तादेश, इड्-

विकल्प इत्यादि विशेष कार्यों को उस-उस धातु के विषय में विस्तरशः प्रदर्शित किया है।

इसके पीछे ण्यन्तादि प्रक्रियाओं को कौमुदीस्थ क्रम से रखा गया है। पुस्तकान्त में धातूपसर्ग-योग नामक एक नया प्रकरण जोड़ा गया है। इसमें प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाली १२ धातुओं का उपसर्गयोग दिखाते हुए कोई २४० वाक्य संगृहीत किये हैं; ये वाक्य प्रायः हमारी अपनी कृति हैं। पर इनमें कुछ भी अमूल नही। सभी समूल हैं। सभी शिष्टव्यवहार-समर्थित हैं।

धातुओं का अभिनव वर्गीकरण

परम्पराप्राप्त प्रचरित धातुपाठ में पढ़ी भ्वादिगण की धातुओं का नये ढंग से वर्गीकरण किया है। वर्तमान धातुपाठ सदोष है, ऐसा कथन साहसमात्र नही। दीक्षित प्रभृति वैयाकरण भी साशङ्क होकर नीचैः स्वर से इसकी सदोषता की ओर सकेत करते हैं—जि जये। अयमजन्तेषु पठितुं युक्तः (दीक्षित)। क्षीज अव्यक्ते शब्दे पढ़ी है। कूज अव्यक्ते शब्दे भी १३ धातुओं के व्यवधान से पूर्व पढ़ी है। इस पर दीक्षित का कहना है—कूजिना सहायं पठितुं युक्तः। क्षि क्षये—इस पर तत्त्वबोधिनीकार का कथन है—अजन्तेषु पठितुं युक्तः। हमें यहाँ कुछ अतिरिक्त वक्तव्य भी है—शुचादयः क्षिवर्जम् उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः—ऐसा धातुपाठ है। हम जानना चाहते हैं कि उदात्त धातुओं के मध्य में अनुदात्त क्षि क्यों पढ़ा गया।

धातुपाठ में जो क्रम आश्रित किया है उसकी बहुत बड़ी प्रयोजनवत्ता नहीं। यह ठीक है कि उदात्तेत् (परस्मैपदी), अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी), स्वरितेत् (उभयपदी), तथा उदात्त (सेट्), अनुदात्त (अनिट्) धातुओं को पृथक् वर्गों में पढ़ना प्रयोजनवान् है, सार्थक है, पर अन्त्य वर्ण के आधार पर, अजन्त, कवर्गीयान्त, चवर्गीयान्त आदि वर्गों में धातुओं का वर्गीकरण कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता। इससे प्रक्रिया में (तिङन्त-रूपरचना में) कोई सौकर्य नहीं होता, तत्तत्कार्य के स्मरण व धारण में कोई सहायता नहीं मिलती, कारण कि सभी अजन्तादि धातुओं में एकसमान शास्त्र-कार्य नहीं होता। वैसे भी धातुपाठ का धातुक्रम युक्तायुक्त-विचार-विश्रान्त है। अत् आदि उदात्त उदात्तेत् परस्मैपदी पढ़ी हैं। फक्क आदि भी उदात्त उदात्तेत् परस्मैपदी पढ़ी हैं। इन्हें दो भिन्न वर्गों में क्यों पढ़ा गया।

अतः हमने धातुपाठ की निर्दोषता-सम्पादन की इच्छा से तथा इसे अधिकाधिक प्रयोजनवान् बनाने के उद्देश्य से भ्वादिगण की धातुओं को १२ अवान्तर गणों में विभक्त किया है—अजन्त १, इगुपध २, दीर्घोपध ३, अकारवान् हलन्त तथा अकारोपध ४, अकारवान् ल्रान्त ५, अन्य हलन्त धातुएँ ५, इदित् ६, ऋदित् ७, ऊदित् ८, एदित् ९, इरित् ११, लृदित् १२। इस वर्गीकरण का आधार धातु का अन्त्य वर्ण ही नहीं। धातु का अन्त्य वर्ण अच्, उपधा इक्, उपधा अ, मध्यस्थ अ, तथा—इकारादि अनुबन्ध—ये सभी इस अभिनव वर्गीकरण के आधार हैं। अजन्त (इगन्त) को शप् परे गुण, लघु इक् उपधा को गुण, दीर्घ उपधा को गुणाभाव, अकारवान् हलन्त को लुङ् में वृद्धि, इडादि सिच् परे रहते वैकल्पिकी वृद्धि, ल्रान्त धातु के ल्, र् से पूर्व वर्तमान अ (ह्रस्व) को नित्य वृद्धि—इत्यादि शास्त्रीय कार्य एकत्र असकृत् दिखाए हुए जैसे झटिति बुद्धिस्थ हो जाते हैं वैसे दूर व्यवहित आये हुए रूपों में दिखाए हुए नहीं। अनुबन्ध-निर्देश से तत्तदनुबन्ध-निमित्तक वह-वह कार्य शीघ्र सुगृहीत हो जाता है। समानानुबन्धक धातुओं को एक-साथ पढ़ने से वे अल्पायास से ही स्मृत्युपारूढ हो जाती हैं। धातुपाठ में भी अनुबन्ध को आश्रित कर एक अवान्तर वर्ग पढ़ा है—अथ डीङन्ता ङितः।

धात्वर्थविवेचन

यहाँ धातुपाठ के अनुसार धात्वर्थ-निर्देश करके धात्वर्थ-विचार भी किया है। ऐसा विचार कहीं-कहीं पूर्व विवरणकारों ने भी किया है। कर्द कुत्सिते शब्दे—ऐसा धातुपाठ है। इससे नहीं जाना जाता कि कुत्सित शब्द से क्या अभिप्रेत है। कौक्षे रवे—ऐसा विवरण है। सुख दुःख तत्क्रियायाम् (कण्ड्वादि) —ऐसा धातुपाठ है। इस पर तदनुभवे—यह विवरण है। पर यह विवेचन अत्यन्त विरल है। जहाँ किया भी है वहाँ धुँधला है। गडि वदनैकदेशे—ऐसा धातुपाठ है। तत्क्रियायाम्—यह विवरण है। यह किंविवरण है। संवरण है ऐसा कहना अधिक उचित होगा। भ्वादिगण की धातुओं के विषय में किये गये हमारे विवेचन को आप व्यापक तथा अर्थयाथार्थ्य-बोधक पायेंगे। धातुपाठ में गत्यर्थवाची शतशः धातुएँ पढ़ी हैं। ये सभी समानार्थक नहीं हो सकतीं। निश्चय ही नानाविध गति अभिप्रेत है। सभी का एकसमान गत्यर्थ में प्रयोग नहीं हो सकता इसे वितत रूप से सोदाहरण दिखाया है। चञ्च् गत्यर्थ में पढ़ी है, पर ग्रामं चञ्चति ऐसा नहीं कह सकते। इस का स्फुरण, स्पन्दन अर्थ

है। प्लुङ् गत्यर्थ में पढ़ी है, पर इस का अर्थ तैरना, बहना, उछलना, उछल कर चलना है, सामान्य गति नहीं, यह सप्रमाण दर्शाया है। म्लुच् गत्यर्थ में पढ़ी है, पर इसका सूर्य की नीचैर्गति (अस्तंगमन) में ही प्रयोग नियत है, अन्यत्र कहीं नहीं। कई धातुओं के अर्थों को प्राचीन साहित्य के प्रयोगों से स्पष्ट किया है। बिदि अवयवे, पिश अवयवे। पूर्वत्र हरिवंश से उदाहरण दिया है, उत्तरत्र अथर्वसंहिता से। इसी से काश्यप का 'बिदि का तिङ्-विषयक प्रयोग नहीं होता' ऐसा कहना साहसमात्र है यह स्पष्ट हो जाता है। पिश् का सुन्दर सुघटित बनाना तथा विघटित करना—दोनों अर्थ हैं यह स्पष्ट किया है। उच्छी विवासे। इस पर क्षीरस्वामी आदि द्वारा किये गये विवासः परिसमाप्तिः इस अर्थापन को अयथार्थ बताया है। वा गतिगन्धनयोः। गन्धनं सूचनम्—ऐसा दीक्षित का विवरण है। सूचन (जो अन्यत्र हिंसाप्रयुक्त सूचन लिया जाता है) का 'वायु' में कुछ भी अन्वय नहीं। सूचन अर्थ में उदाहरण भी नहीं है। सूचनार्थ विचारासह है इसे सप्रमाण दिखाया है।

बहुत्र अर्थनिर्देश से यह निश्चित नहीं होता कि धातु सकर्मक है अथवा अकर्मक। ह्वृ कौटिल्ये, क्नूयी उन्दे शब्दे च—ये अकर्मक हैं, सकर्मक नहीं, इसे सप्रमाण सिद्ध किया है। स्वृ शब्दोपतापयोः। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है, किस अर्थ में यह सकर्मक है, किसमें अकर्मक—इसका विवेचन किया है। गृधु अभिकाङ्क्षायाम् की अकर्मकता के विषय में दिये गये नाना उदाहरणों द्वारा इसकी सकर्मकता-विषयक भ्रान्ति का निरास किया है। सकर्मकता-अकर्मकता-विषयक भट्टि की अनेक भ्रान्तियों का दिग्दर्शन भी कराया है।

धात्वर्थों की द्योतकता में उपसर्गनैयत्य भी निदर्शित किया है। चायृ पूजा-निशामनयोः। पूजा अर्थ में अप-पूर्वक चाय् का प्रयोग होता है। निशामन (दर्शन) अर्थ में निपूर्वक चाय् का—ऐसा नियम है।

भ्वादिगण के अन्त में 'वर्धते धातुगणः' तथा चुरादिगण के अन्त में 'सर्वे नवगण्यां पठिता धातवः स्वार्थे णिचं लभन्तेऽपठिताश्च केचन', और ण्यन्त प्रक्रिया के अन्त में 'अन्तर्भावितण्यर्थकाः' इन विषयों का निरूपण किया है। अनुबन्ध (१) में धात्वर्थवैचित्र्य को दिखाया है।

धातुपाठ में धात्वर्थ निर्देश व्यामोहक है इस विषय में हमारा निबन्ध 'पाणिनीये धातुपाठेऽर्थनिर्देशः' इस शीर्षक से जर्नल् आफ् ओरियण्टल् रिसर्च्, मद्रास (खण्ड २७, भाग १८४, सितम्बर १९५७, अगस्त १९५८, पृ० ७९-८४) में प्रकाशित हुआ है। इसे आप पढ़ें। मुझे यहाँ इतना कहना है कि जब

दीक्षित आदि का यह मत है कि धातुपाठ में जो अर्थ-निर्देश है वह आचार्य पाणिनिकृत नहीं, आधुनिक है, भीमसेनादि आचार्यों द्वारा प्रणीत है, तो इसमें अपाणिनीय प्रयोगों के साधुत्व के लिये निपातन क्यों आश्रित किया है। यम उपरमे, टुवम उद्गिरणे, दंश दशने—इत्यादि स्थलों में शोधन क्यों नहीं किया जाता ?

धातूदाहरण

उस-उस अर्थ में पढ़ी हुई धातुओं के प्रयोगों को दिखाने की चिन्ता न प्राचीन वैयाकरणों को थी, न अर्वाचीनों को है। इस अनभिनन्दनीय औदासीन्य के कारण व्याकरण प्रक्रिया-प्रधान शास्त्र ही रह गया। व्यवहृत तथा अव्यवहृत शब्दों की सिद्धि ही इसका एकमात्र लक्ष्य हो गया। धात्वर्थ जानने पर भी प्रयोगविषयक परिस्फुट ज्ञान न होने से बड़े-बड़े व्याकरणश्रमी मनमाने ढंग से धातुओं का प्रयोग करते हैं और कुछ भी उद्विग्न नहीं होते। इस अनिष्ट के वारण के लिये हमने इस ग्रन्थ में विशाल संस्कृत साहित्य से उस-उस धातु के उस-उस अर्थ में प्रयोगों को ढूंढकर रखा है। इस ढूंढ में हमें वेद तक जाना पड़ा है। जो धातुएँ छान्दस नहीं हैं, लौकिक हैं, उनके प्रयोग भी लौकिक साहित्य में विरल हैं। दय् दान, गति, रक्षण, हिंसा, आदान—इन पाँच अर्थों में पढ़ी है। (लोक में प्रसिद्ध दया करना अर्थ रक्षण से उपलक्षित होता है)। इन अर्थों में वैदिक उदाहरण मिलते हैं और वे यहाँ दिये हैं। शब्दज्ञानपूर्वके प्रयोगे धर्मः यह हमारा सिद्धान्त है। हमारी इस कृति का प्रयोग-ज्ञान अथवा वाग्व्यवहार-ज्ञान मुख्य साध्य है, प्रक्रिया अथवा व्याक्रिया साधनमात्र है। उदाहरणों की प्रचुरता व प्रत्यग्रता प्रथम दो खण्डों की तरह इस खण्ड का स्वालक्षण्य है। अतिरुचिर शिष्टजुष्ट वाक्यावलि समस्त ग्रन्थ को व्याप रही है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में प्रयोगमाला दी गई है जो पढ़ते ही बनती है। प्रयोग साधुत्व-ज्ञान के लिये ही हमने उपग्रह-विषयक स्खलनों से दूषित (पर अन्यथा अतीव रुच्य) २०० वाक्य परिशोधनार्थ दिये हैं।

व्याख्या

यहाँ सूत्रादि की व्याख्या कैसी हुई है यह पूर्वत्रासिद्धम् (पृ० १५६), असिद्धवदत्राभात् (पृ० ७३, ७४), कृ सृ भृ वृ स्तु द्रुस्रु श्रुवो लिटि (पृ०२९६), कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः (पृ० ४६४), पूर्ववत्सनः (पृ० ४६५), श्तिपा शपानुबन्धेन० की विवृति (पृ० ४२३) को देखने से सुविदित हो जायगा।

प्रक्रिया

प्रक्रियांश में हमारा कुछ वैशिष्ट्य नहीं हमने कुछ नूतन नहीं कह प्रत्येक लक्ष्य में लक्षण-प्रवृत्ति को यथेष्ट रूप से दिखाया है। साथ ही पूर्वाचार्यों से किये गये आक्षेप समाधानों को स्पष्ट करने तथा सुग्रह बनाने का पूरा प्रयत्न किया है।

अनुबन्ध

पुस्तक के अन्त में तीन अनुबन्ध लगाये हैं। अनुबन्ध (१) में उक्त, अनुक्त, दुरुक्त की चिन्ता की गई है। अनुबन्ध (२) में 'करोतिना सर्वधात्वर्थानुवादः क्रियते' इस विषय का निरूपण किया है। यह विषय इसी कृति में इदम्प्रथमतया निरूपित किया गया है। इसे आप अतिरोचक तथा अत्यन्तोपयोगी पाएँगे। अनुबन्ध (३) में समानार्थक धातुओं का कारिकाबद्ध संग्रह दिया है जिसकी उपयोगिता में लेशमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता है।

हमारा मतभेद

(क) ण्यन्त लभ् को प्राप्त्युपसर्जन गतिप्रधान अर्थ में द्विकर्मक माना गया है। अन्यथा अनुक्त कर्ता में तृतीया होती है, ऐसा मत है। हमने द्विकर्मकता ही स्वीकार की है। हमारे मत की उपपादना के लिये अनुबन्ध(१) पढ़ें।

(ख) 'समः प्रतिज्ञाने' सूत्र की व्याख्या में सभी व्याख्याकार तुदादि गॄ निगरणे का ग्रहण करते है। हमें क्र्यादि गॄ शब्दे का ग्रहण इष्ट है। यह क्यों इसके लिये आत्मनेपद प्रक्रिया में पृ० ४६३ पर हमारा विमर्श पढ़ें।

(ग) दिवादिगण में केचिदाद्यन्तव्यत्यासेन पतेति पठन्ति। क्षीरस्वामी के अनुसार यह द्रमिड लोगों का अभिमत पाठ है। माधव दोनों पाठों को प्रमाण मानता है। हमारे विचार में 'पत ऐश्वर्ये वा' यही पाठ युक्त है। दूसरा अविचारित-रमणीय है। इसे हमने वैदिक उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया है। इसे पृ० १२६ तथा अनुबन्ध (१) में देखें।

(घ) 'नानोर्ज्ञः' सूत्र की व्याख्या में वृत्तिकारादि सर्पिषोऽनुजिज्ञासते यहाँ 'पूर्ववत्सनः' से आत्मनेपद की प्राप्ति निर्बाध मानते हैं। यह हमें मान्य नहीं। इस विषय में यहाँ दिए हुए हेतुओं पर मर्मज्ञ विद्वान् ध्यान दें।

(ङ) 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' सूत्र की व्याख्या में भट्टोजिदीक्षित ने जो 'यावत्पुरानिपातौ निश्चयं द्योतयतः' यह कहा है वह हमें न्याय्य प्रतीत नहीं होता। यह अर्थ हमें स्वीकार्य नहीं। यह क्यों? इस सूत्र की व्याख्या (पृ० ५०५) देखें।

मुद्रण के विषय में एक शब्द कहना है। प्रथम दो खण्डों की तरह इस खण्ड का मुद्रण भी प्रायः स्वच्छ व शुद्ध हुआ है। पर प्रूफ्-संशोधन में महान् अभियोग करने पर भी कुछ न कुछ मुद्रणस्खलन रह ही जाते हैं। इन्हें हमने पुस्तक के अन्त में अशुद्ध-शोधन के नाम से दिया है। अप्रतिबुद्ध-बोधनार्थ कुछ एक को यहाँ भी दोहराया जाता है—पृ० ६३—सेधेतम (अशुद्ध)। **सेघेतम्** (शुद्ध)। सेधयम् (अशुद्ध)। **सेधियम्** (शुद्ध)। पृ० ८७—अधाध्वम् (अशुद्ध)। **अधीध्वम्** (शुद्ध)। पृ० ८६—वातये (अशुद्ध)। **वीतये** (शुद्ध)। इनमें हल् चिह्न के निकल जाने से अथवा मात्रा के टूट जाने से अशुद्धि हुई है। पृ० २६१—अघृक्षत (अशुद्ध)। **अघुक्षन्त** (शुद्ध)। पृ० ३०८ पं २१—दद्दशतुः (अशुद्ध)। **दद्दशथुः** (शुद्ध)।

यह तृतीय खण्ड ५९७ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इसके प्रणयन में जो परिश्रम मैंने किया है उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना। यही विनम्र प्रार्थना है कि विद्वान् अध्यापक इसे आमूल-चूल देख जायें। इसीसे मैं अपने आपको कृतार्थ समझूँगा।

धात्वर्थादिविवेचनैश्च समितः सूत्रार्थसंमर्शनैः
शैक्षार्थं च कृतैर्वरैः सुविशदैश्चोद्यार्थसंचिन्तनैः।
साहित्याब्धिसमुद्धृतैश्च विविधैर्वाक्यैर्भृशं रोचनै-
र्ग्रन्थो वाचि विचक्षणैः सुकृतिभिस्तैर्ऽयमालोच्यताम्॥

यदि तनुरपि तोषो मत्कृतौ नूतनार्थाल्
लसति हृदि बुधानां वाचि निष्ठां गतानाम्।
यदि च भवति बोधः संमतः शब्दशास्त्रे
सुमतियुतबटूनां स्यात्तदा धन्यता मे॥

सुरभि ३|५४, रूपनगर
दिल्ली—७
१ जुलाई, १९७१

निवेदक
विद्वद्विधेय चारुदेवशास्त्री।

ओं नमः परमात्मने

नमो भगवते पाणिनये । नमः शिष्टेभ्यः ।

प्रकृत्यादिविभागेन शब्दानामनुशिष्यते ।
साधुत्वं येन तच्छास्त्रं वेद्यं व्याकरणाभिधम् ॥१॥

व्याक्रियन्ते पदानीह क्रियन्ते नूतनानि न ।
अन्वाख्यानस्मृतिस्तस्मादुक्ता व्याकरणं बुधैः ॥२॥

ऐतदात्म्यमिदं शास्त्रं प्रस्मृत्येदं निरर्गलाः ।
त तमर्थं विवक्षन्तः शब्दान्नूत्नान्प्रकुर्वते ॥३॥

अर्थेऽर्थे प्रत्ययं शिष्ट्वा शिष्टैर्व्युत्पादितानुत ।
अर्थान्तरेऽननुज्ञाते शब्दान्वामी प्रयुञ्जते ॥४॥

आसतां तावदन्ये येऽर्वाचीनाः साहसप्रियाः ।
भट्ट्याद्यैः सूरिभिश्चापि सम्प्रदायो न रक्षितः ॥५॥

तद्रक्षया प्रणुन्नोऽहं विनेयप्रणयेन च ।
व्याक्रियां लौकिकानां हि शब्दानां वक्तुमुद्यतः ॥६॥

सूत्राणां वार्तिकानां च सम्प्रदायानुरोधिनी ।
सोपपत्तिरसन्देहा व्याक्रिया प्रकृते स्थिता ॥७॥

पदानां प्रक्रिया लघ्वी बुद्धिवैशद्यकारिणी ।
शैक्षाणामुपकाराय प्रभूताय भविष्यति ॥८॥

इहस्थं वाक्यसन्दोहं दर्शं दर्शं बुभुत्सवः ।
प्रयोगनैपुणीं काञ्चिल्लप्स्यन्तेऽन्यत्र दुर्लभाम् ॥९॥

अज्ञानमन्यथाज्ञानं ज्ञानं सांशयिकं तथा ।
भेत्स्यतीयं कृतिः कृत्स्नं तमश्चन्द्रोदयो यथा ॥१०॥

विषयानुक्रमणी

तिङन्त विभक्तियाँ	१	अङ् प्रत्यय	२३१
भ्वादिगण (सार्वधातुक लकार)	६	सिच् प्रत्यय	२३४
वर्धते धातुगणः	७१	सिष् (सक् इट् सिच्)	२५७
अदादिगण	७२	सिच्-लुक्	२५६
जुहोत्यादिगण	१०६	क्स	२६०
दिवादिगण	१२२	चङ्	२६३
स्वादिगण	१३८	सन्वल्लघुनि सूत्रकी सविस्तर व्याख्या	२६५
तुदादिगण	१४३	भाव-कर्मवाची लुङ्	२८५
रुधादिगण	१५५	प्रयोग-माला	२६०
'पूर्वत्राऽसिद्धम्' सूत्रकी सविस्तर व्याख्या	१५६	लिट्-निरूपण (परस्मै०प्रत्यय)	२६५
तनादिगण	१६५	क्रादि-नियम की सविस्तर व्याख्या	२६६
क्र्यादिगण	१७०	लिट्-रूपावली	२६६
चुरादिगण	१७६	प्रयोगमाला	३३६
लुट् आदि (आर्धधातुक लकार)	१६७	आशीर्लिङ्	३४०
अजन्त सेट् धातुएँ	१६८	प्रयोगमाला	३४७
हलन्त अनिट् धातुएँ	१६८	णिजन्तप्रक्रिया	३४८
अनिट् कारिकाएँ	२०१	अन्तर्भावितण्यर्थक धातुएँ	३६३
लुट् प्रत्यय	२०४	सन्नन्त प्रक्रिया	३६५
लुट् रूपावलि	२०५	सन्नन्तरूपावली	३६६
लृट् प्रत्यय, प्रयोग व रूपावलि	२०६	प्रयोगमाला	३८८
लृङ् प्रत्यय तथा प्रयोग	२०८	यङन्तप्रक्रिया	३६२
इट्-व्यवस्था	२१०	प्रयोगमाला	४००
लुट्-लृट्, लृङ् रूपावली	२१३	यङ्लुगन्तप्रक्रिया	४०३
प्रयोगमाला	२२७	यङ्लुगन्त रूपावली	४०४
लुङ् निरूपण	२२६	श्तिपा शपाऽनुबन्धेन	४२३

कारिका की सविस्तर व्याख्या	४२३	आत्मनेपद प्रक्रिया	४४८
नामधातु प्रक्रिया	४२५	परस्मैपद प्रक्रिया	४७०
क्यच् प्रत्यय	४२५	उपग्रहे स्खलितानि	४७४
काम्यच्, क्यष्	४२७	भाव-कर्म-प्रक्रिया	४८३
क्यङ्	४३०	कर्म-कर्तृ-प्रक्रिया	४९३
क्यष्, क्यङ्	४३१	लकारार्थ प्रक्रिया	५०१
णिङ्	४३३	धातूपसर्गयोग	५२२
णिजन्त नामधातु	४३४	अनुबन्ध (१)	५३८
क्विप्	४४१	अनुबन्ध (२)	५५४
प्रयोगमाला	४४१	अनुबन्ध (३)	५६१
कण्ड्वादिगण	४४६		

अथ

व्याकरणचन्द्रोदये तिङन्तप्रकरणम्

ये प्रधानं पदं वाक्ये यतो वाक्यार्थनिर्णयः ।
यान्विना वाक्यतोऽसिद्धिस्तांस्तिङन्तान्प्रचक्ष्महे ।।

गण-पठित भू आदि क्रियावाचक शब्दों को '**धातु**' कहते हैं ।[1] संस्कृत में भिन्न-भिन्न कालों तथा विध्यादि अर्थों के वाचक दस प्रत्यय हैं—लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् । इन सब में 'ल' समान होने से इन्हें "**लकार**" कहते हैं । इनमें पञ्चम लकार (लेट्) छन्दोमात्र-गोचर (वैदिक-विषय) है । वह इस पुस्तक का विषय नहीं । लकार मात्र के स्थान में धातु से परे निम्नलिखित १८ प्रत्यय आदेश होते हैं[2]—

तिप् । तस् । झि । सिप् । थस् । थ । मिप् । वस् । मस् । (परस्मैपद)
त । आताम् । झ । थास् । आथाम् । ध्वम् । इट् । वहि । महिङ् ।(आत्मनेपद)

तिप् के 'ति' से महिङ् के ङ् तक एक "**तिङ्**" प्रत्याहार बन जाता है, जिससे इन सब का ग्रहण होता है । तिङ् प्रत्ययों के तीन-तीन के समुदाय की **विभक्ति** संज्ञा है ।[3] विभक्त्यन्त को पद कहते हैं । अतः पाणिनीय व्याकरण में आख्यात (क्रियावाचक पद) को तिङन्त कहते हैं ।

कई एक लकारों में तिङ् प्रत्ययों के एकदेश में विकार हो जाता है । लिट् परस्मैपद में तो सारे तिङ् प्रत्ययों के स्थान में आदेश हो जाते हैं, अर्थात् प्रत्यय पूर्णरूप से बदल जाते हैं, तो भी एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति, इस

---

१. भूवादयो धातवः (१।३।१) ।
२. लस्य (३।४।७७) ।
३. विभक्तिश्च (१।४।१०४) ।

न्याय से तथा आदेश स्थानी के तुल्य (तुल्यधर्मा) होता है इस अतिदेश के अनुसार वे सब तिङ् ही हैं।

तिप् से मस् तक ९ प्रत्ययों की **परस्मैपद** संज्ञा है।[१] **तङ्**=त से महिङ् तक के ९ प्रत्ययों की **आत्मनेपद**[२] और **शानच्, कानच्** की भी। परस्मैपद के तीन-तीन के समुदाय की क्रम से **प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष** संज्ञा है।[3] ये प्रत्यय प्रथमपुरुष आदि को कहते हैं अतः इन्हें ही प्रथमपुरुष आदि कह दिया गया है। तिङ् प्रत्ययों के कर्तृ-कर्म-वाची होने से इनकी ये संज्ञाएँ की गई हैं। जिसको अधिकृत करके कुछ कहा जाता है वह **प्रथमपुरुष** है। जिसे अभिमुख करके कहा जाता है उसे मध्यमपुरुष कहा जाता है। और कहने वाले को उत्तमपुरुष कहते हैं। उत्तम का अर्थ अन्तिम है, सत्तम नहीं। प्रत्येक त्रिक (तीन-तीन के समुदाय) के प्रथम को **एकवचन**, द्वितीय को **द्विवचन** और तृतीय को **बहुवचन** कहते हैं।[४] कर्ता व कर्म के एक होने से धातु से एकवचन, दो होने से द्विवचन, तीन व तीन से अधिक होने से बहुवचन होता है।[५] तिङ् प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्ता अथवा कर्म के वाचक होते हैं और अकर्मक धातुओं से कर्ता अथवा भाव के।[६]

युष्मद् (सर्वनाम) प्रयुक्त अथवा अप्रयुक्त (=गम्यमान) जब तिङन्त के

---

१. लः परस्मैपदम् (१।४।९९)।

२. तङानावात्मनेपदम् (१।४।१००)।

३. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथम-मध्यमोत्तमाः (१।४।१०१)।

४. तान्येकवचन-द्विवचन-बहुवचनान्येकशः (१।४।१०२)।

५. बहुषु बहुवचनम् (१।४।२१)। द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने (१।४।२२)। **उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते। दानं प्रतिग्रहो यज्ञः स्वाध्यायश्च निवर्तते** (मनु० ५।३ प्रक्षिप्त)॥ **आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्**॥ इन दोनों पद्यों में कर्ता के अनेक होने पर भी जो धातु से परे एकवचन का प्रयोग हुआ है, उसका यही समाधान है कि अन्तिम कर्ता के एक होने से, उसके साथ ही अन्वय मानने से 'निवर्तते' तथा 'जानाति' में एकवचन हुआ है। दूसरे कर्ताओं के साथ अन्वित क्रियापद का अध्याहार कर लिया जाता है।

६. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः (३।४।६९)।

साथ समानाधिकरण=समानकारक हो तो धातु से मध्यम पुरुष प्रयुक्त होता है।[1] १—**त्वं पश्यसि** तू देखता है। २—**त्वं दृश्यसे** तू देखा जा रहा है। (१) में तिङ् का वाच्य कर्ता है और त्वम् भी कर्तृकारक है। (२) में तिङ् का वाच्य कर्म है और त्वम् भी कर्मकारक है। कर्म उक्त होने से कर्म में द्वितीया विभक्ति नहीं हुई।

अस्मद् (सर्वनाम) प्रयुक्त अथवा अप्रयुक्त जब तिङन्त के साथ समानाधिकरण हो तो धातु से उत्तमपुरुष प्रयुक्त होता है[2]—**अहं पश्यामि**, मैं देखता हूँ। **अहं दृश्ये**, मैं देखा जा रहा हूँ।

युष्मद् अस्मद् से भिन्न कोई और शब्द समानाधिकरण हो तो धातु से प्रथम पुरुष प्रयुक्त होता है[3]—**स पश्यति । स दृश्यते । रामः पश्यति । रामो दृश्यते । भवान् पश्यति । भवान् दृश्यते ।**

जब किसी धातु के समीप मन् दिवा० का प्रयोग हो और वाक्यार्थ से प्रहास (हँसी) की प्रतीति होती हो तब उस धातु से परे 'ल' के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है और समीपस्थ मन् से उत्तमपुरुष एकवचन का[4]—**एहि मन्ये, ओदनं भोक्ष्यसे । न हि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः**, आइये, क्या आप समझते हैं कि भात खाएँगे? नहीं खाओगे, उसे तो अतिथि खा चुके हैं। प्रहास की प्रतीति न हो और वस्तुकथन मात्र हो तो **एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति । नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः ।** यथाप्राप्त मध्यमपुरुष और उत्तमपुरुष होंगे। प्रकृत विषय में महावीरचरित में एक सुन्दर उदाहरण है—**एहि मन्ये राजपुत्र, जामदग्न्यं विजेष्यसे ।** (सस्मितम्)। **नहि विजेष्यसे** (अङ्क ३)।

समस्त धातुराशि को व्याकरणाचार्यों ने दस गणों में विभक्त किया है—**१. भ्वादि** (भू आदि)। **२. अदादि । ३. जुहोत्यादि । ४. दिवादि । ५. स्वादि । ६. तुदादि । ७. रुधादि । ८. तनादि । ९. क्र्यादि** (क्रीआदि)। **१०. चुरादि ।**

कई धातु केवल परस्मैपदी होती हैं, अर्थात् उनसे परस्मैपद प्रत्यय ही

---

१. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः (१।४।१०५)।
२. अस्मद्युत्तमः (१।४।१०७)।
३. शेषे प्रथमः (१।४।१०८)।
४. प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च (१।४।१०६)।

आते हैं। कई केवल आत्मनेपदी और कई परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों, अर्थात् उभयपदी। जो धातु अनुदात्तेत् (जिनका अनुदात्त अच् इत्संज्ञक हो, जिन्हें आचार्य ने कार्य-विशेष के लिए अनुदात्त स्वर सहित पढ़ा है, (जो स्वर इत् होता है, चला जाता है, रहता नहीं) अथवा ङित् (जिनका ङ् इत् हो) हों वे **आत्मनेपदी**[1], जो स्वरितेत् (स्वरित अच् जिनका इत् हो) अथवा ञित् हों वे क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर (जब क्रिया का मुख्य फल, जिसके लिए क्रिया की जाती है, क्रिया के करने वाले को मिले) आत्मनेपदी होती हैं अन्यथा परस्मैपदी[2]। अर्थात् ऐसी धातुएँ **उभयपदी** होती हैं। जिन धातुओं से पाणिनि मुनि आत्मनेपद विधान नहीं करते उन सबसे परस्मैपद प्रत्यय आते हैं कर्ता के वाच्य होने पर।[3] अर्थात् वे **परस्मैपदी** होती हैं।

तिङ् और धात्वधिकारोक्त शित् (शकारेत्=शप्, श्यन्, श, श्नम् आदि) प्रत्ययों की **सार्वधातुक** संज्ञा है।[4]

तिङ् और शित् से भिन्न धातु से विहित प्रत्ययों की **आर्धधातुक** संज्ञा है।[5]

१—जिससे प्रत्यय विधान किया जाता है, उस प्रत्यय के परे रहते तदादि शब्द स्वरूप को **अङ्ग** कहते हैं।[6]

२—सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर इगन्त (इक् अन्त वाले) अङ्ग को गुण होता है।[7] गुण वृद्धि शब्द उच्चारण करके (गुण हो वृद्धि हो ऐसा कहकर) जो गुण वृद्धि विधान किए जाते हैं वे इक् के स्थान में होते हैं ऐसी परिभाषा है।[8] इवर्ण को 'ए', उवर्ण को 'ओ', ऋवर्ण को अर् (रपर अ) तथा लृवर्ण को अल् (लपर अ) गुण होता है।

---

१. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (१।३।१२)।
२. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले (१।३।७२)।
३. शेषात्कर्तरि परस्मैपदम् (१।३।७८)।
४. तिङ्-शित्सार्वधातुकम् (३।४।११३)।
५. आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४)।
६. यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१।४।१३)।
७. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (७।३।८४)।
८. इको गुणवृद्धी (१।१।३)।

३. **पुगन्त** (पुक् अन्त, पुक्=प् आगम है अन्त जिसका) अङ्ग तथा **लघूपध** (**उपधा**=अन्त्य अल् से पूर्ववर्ती वर्ण, लघु उपधा वाले) अङ्ग के इक् को गुण होता है सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर ।[1] यहाँ (२) से गुण की प्राप्ति नहीं थी, अतः विशेष विधान किया है ।

४. जो सार्वधातुक पित् न हो वह ङित् वत् समझा जाता है, अर्थात् ङित् प्रत्यय परे रहते जो कार्य प्राप्त होता है वह अपित् सार्वधातुक परे रहते भी होता है ।[2]

५—कित् ङित् प्रत्यय के निमित्त से जो गुण वृद्धि प्राप्त होते हैं वे नहीं होते । अर्थात् पूर्व दो सूत्रों से प्राप्त गुण (और सूत्रान्तर से प्राप्त वृद्धि भी) प्रत्यय के कित् अथवा ङित् होने से रुक जाता है ।[3]

६—वर्तमान में होने वाली क्रिया को कहने वाली धातु से **लट् प्रत्यय** आता है ।[4] **अदन्त** अङ्ग से लट् के स्थान में अधोलिखित तिङ् प्रत्यय (आदेश रूप से) आते हैं—

लट्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु०
प्रथमपुरुष	ति (प्)	तस्	अन्ति	ते	इते	अन्ते
मध्यमपुरुष	सि (प्)	थस्	थ	से	इथे	ध्वे
उत्तमपुरुष	मि (प्)	वस्	मस्	ए	वहे	महे

अदन्त अङ्ग भ्वादि, दिवादि, तुदादि चुरादि गण तथा सन्नन्त आदि धातुओं से शप् आदि आने से निष्पन्न होता है । अन्यत्र अदादि आदि गणों में अदन्त अङ्ग दुर्लभ है । 'झि' के झ् मात्र को अन्त् आदेश होता है[5] । अङ्ग चाहे अदन्त हो अथवा न हो । जो टित् लकार हैं जैसे लट, लोट्, लिट्, उनमें

---

१. पुगन्त-लघूपधस्य च (७।३।८६) ।
२. सार्वधातुकमपित् (१।२।४) ।
३. क्ङिति च (१।१।५) ।
४. वर्तमाने लट् (३।२।१२३) ।
५. झोऽन्तः (७।१।३)।

आत्मनेपद प्रत्ययों के टि[1] (अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् उसकी, यदि उससे परे अन्त्य हल् हो तो उन दोनों की 'टि' संज्ञा है) को 'ए' हो जाता है[2], जिससे त, आताम्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महि को क्रम से ते, इते (यहाँ आ को इय् होकर य्-लोप भी[3]), इथे, (आ को इय् होकर य-लोप भी), ध्वे, ए, वहे, महे आदेश हो जाते हैं । टित् लकारों के थास् को 'से' आदेश होता है[4] । 'झ' को 'अन्त' होकर उसके टि-भाग को 'ए' होने से 'अन्ते' प्रथम-पुरुष बहुवचन होता है ।

लोट्

	एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु
प्र०पु०	तु—तात्	ताम्	अन्तु	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म०पु०	—तात्	तम्	त	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ०पु०	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

लोट्-सम्बन्धी तस्, थस्, थ को क्रम से ताम्, तम्, त आदेश होते हैं ।[5] तिप् के स्थान में 'तु', अन्ति के स्थान में 'अन्तु' आदेश होते हैं ।[6] सिप् को 'हि' होता है, जिस का **अदन्त अङ्ग से परे लुक् हो जाता है** ।[7] आशीरर्थ में तु और हि को तातङ् (तात्) आदेश विकल्प से होता है ।[8] सिप् पित् है पर उसका आदेश 'हि' अपित् होता है जिस से 'हि' परे रहते धातु को गुण नहीं होता है । मिप् को 'नि' आदेश होता है ।[9] वस्, मस् के स् का लोप हो जाता है ।[10]

१. अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६४)

२. टित आत्मनेपदानां टेरे (३।४।७८)।

३. आतो ङितः (७।२।८१)। आत्मनेपद प्रत्यय सभी अपित् होने से ङित्वत् हैं । यह आदेश अदन्त अङ्ग से परे ङित् लकार के अवयव आकार को होता है । अदन्त-अंग न होगा तो यह आदेश नहीं होगा । इस आदेश 'इय्' के य् का लोपो व्योर्वलि (६।१।६६) से लोप हो जाता है ।

४. थासः से (३।४।८०) ।

५. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः (६।४।१०१) ।

६. एरुः (३।४।८६) ।

७. सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) । अतो हेः (६।४।१०५)।

८. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् (७।१।३५) ।

९. मेर्निः (६।४।८९) ।

१०. लोटो लङ्वत् (३।४।८५) । नित्यं ङितः (३।४।९९) ।

दोनों पदों में उत्तमपुरुष के प्रत्ययों से पूर्व आ (ट्) आगम होता है जो पित् माना जाता है।[१] जिससे अङ्ग को यथाप्राप्त गुण होता है। आत्मनेपद प्रत्यय त आदि की टि को लकार के टित् होने से 'ए' हो जाने पर उसे फिर आम् कर दिया जाता है।[२] थास् के स्थान में हुए हुए 'से' के 'ए' को व, तथा ध्वे (ध्वम् से बने हुए) के 'ए' को अम् आदेश होते हैं।[3] उत्तमपुरुष के प्रत्ययों के टित्त्व से प्राप्त एकार को ऐकार हो जाता है।[४] प्रक्रिया में अदन्त अङ्ग से अजादि प्रत्यय परे होने पर गुण, वृद्धि, दीर्घ रूप एकादेश होते हैं।

लोट् का प्रयोग किसी काल-विशेष में न होकर विधि निमन्त्रण आदि, आशिस्, कामचाराऽनुज्ञा आदि अर्थों में होता है।

लङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	एक०	द्वि०	बहु०			
प्र०पु०	त्	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
म०पु०	स्	तम्	त	थास्	इथाम्	ध्वम्
उ०पु०	अम्	व	म	इ (ट्)	वहि	महि

तिप् सिप् भि के इकार का लोप हो जाता है[५]। 'झ्' को अन्त् होकर संयोगान्तस्य लोप: (८।२।२३) से 'त्' का लोप हो जाता है। जिससे प्र०पु० बहु० अन् होता है। मिप् को अम् आदेश होता है[६]। आदेश स्थानी के तुल्य होता है, अत: यह अम् भी पित् ही है। वस्, मस् के 'स्' का लोप हो जाता है।[७] आत्मनेपद प्रत्ययों के विषय में कुछ विशेष वक्तव्य नहीं। केवल अङ्ग के अदन्त होने से आताम्, आथाम् के 'आ' को इय् होकर य् का लोप हो जाता है

---

१. आडुत्तमस्य पिच्च (३।४।९२)।

२. आमेत: (३।४।९०)।

३. सवाभ्यां वामौ (३।४।९१)।

४. एत ऐ (३।४।९३)।

५. इतश्च (३।४।१००)।

६. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः (३।४।१०१)।

७. नित्यं ङित: (३।४।९९)।

जैसे लट् में होता है। प्रक्रिया में अदन्त अङ्ग से परे आये इट् (उ० पु० ए०) तथा पूर्ववर्ती 'अ'—इन दोनों के स्थान में गुण-रूप एकादश 'ए' हो जाता है। ऐसा ही इताम्, इथाम् के परे होने पर होता है।

लङ् प्रत्यय अनद्यतन (आज से भिन्न) भूत काल के अर्थ में धातु से आते हैं।[1]

विधिलिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु
प्र०पु०	इत	इताम्	इयुः	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म०पु०	इस्	इतम्	इत	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ०पु०	इयम्	इव	इम	ईय	ईवहि	ईमहि

यहाँ लकार (लिङ्) के ङित् होने से प्रत्यय प्रायः वही हैं जो लङ् के। पस्मैपद प्रत्ययों को यासुट् (यास्) आगम होता है, जिसे उदात्त और ङित माना जाता है।[2] अदन्त अङ्ग से परे इस यास् को इय् हो जाता है[3], जिसके 'य्' का य—भिन्न व्यञ्जन परे होने पर लोप हो जाता है (लोपो व्योर्वलि)। इयुः, इयम् में य् लोप नहीं हुआ क्योंकि परे उस् और और अम् का अच् है। ङित् लकार होने से झिके इ का लोप होने पर 'झ' को 'उस्' आदेश होता है।[4] लिङ् प्रत्यय-सम्बन्धी त, थ को सुट् आगम भी होता है दोनों पदों में।[5] पर इसका विधिलिङ् में लोप हो जाता है।[6] आशीर्लिङ् में इसका श्रवण होता है अर्थात् यह अवस्थित रहता है, विशेष कर स्फुट रूप से आत्मनेपद में।

लिङ्-सम्बन्धी आत्मनेपद प्रत्यय भी प्रायः वही हैं जो लङ् के। 'झ' को यहाँ 'रन्' आदेश होता है[7] और उत्तमपुरुष इ (ट्) को अ ('त्')[8]। लिङ् को

---

१. अनद्यतने लङ् (३।२।१११)।
२. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च (३।४।१०३)।
३. अतो येयः (७।२।८०)।
४. झेर्जुस् (३।४।१०८)।
५. सुट् तिथोः (३।४।१०७)।
६. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य (७।२।७९)।
७. झस्य रन् (३।४।१०५)।
८. इटोऽत् (३।४।१०६)।

सीयुट् (सीय्) आगम होता है[1] और प्रत्ययावयव त्, थ् को सुट् आगम।[2] इन दोनों सकारों का विधिलिङ् में लोप हो जाता है।[3] सीयुट् के 'य्' का पूर्वोक्त विधि से लोप हो जाता है।

लिङ् प्रत्यय विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण आदि अर्थों में आते हैं। आशिस् में भी आते हैं। आशिस् अर्थ से व्यतिरिक्त विध्यादि अर्थों में प्रयुक्त हुए लिङ् को **विधिलिङ्** कह दिया जाता हैं। इसे **सार्वधातुक लिङ्** भी कहते हैं।

भ्वादि गण (प्रथम गण)

७—धातु से परे शप् (अ) प्रत्यय आता है कर्तृवाची सार्वधातुक परे होने पर[4]। शप् को **विकरण** कहते हैं। श्, प् की इत्संज्ञा है। शप् शित् होने से सार्वधातुक प्रत्यय है। शप् धातुमात्र से विहित है, किसी गणविशेष की धातुओं से नहीं। अतः ण्यन्त, सन्नन्त धातुओं से परे भी होता है। भू आदि से शप् आने से भ्वादिगण की धातुओं को **शब्विकरण** कहा जाता है।

८—अपदान्त अकार से परे गुण-संज्ञक अ, ए हों तो दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश हो जाता है। यह सवर्णदीर्घत्व और वृद्धि का अपवाद है।[5]

९—अदन्त अङ्ग को यञ् आदि सार्वधातुक परे होने पर दीर्घ हो जाता है[6]। यञ्=य र ल व, अनुनासिक, झ, भ।

भू लट्। भू तिप्। भो अ ति (२) भवति (अवादेश)। भो अ अन्ति। भवन्ति (८)। भो अ मि। भव मि। भवामि (९)।

अजन्त धातुएँ

भू सत्तायाम् (होना)[7] परस्मैपदी

---

१. लिङः सीयुट् (३।४।१०२)।

२. सुट् तिथोः (३।४।१०७)।

३. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य (७।२।७९)।

४. कर्तरि शप् (३।१।६८)।

५. अतो गुणे (६।१।९७)।

६. अतो दीर्घो यञि (७।३।१०१)।

७. भू आदि धातुओं के जो सत्ता आदि अर्थ दिये हैं वे केवल धातुओं के क्रियावाचित्व को दिखाने के लिये पढ़े हैं, वे अर्थों के उदाहरण हैं, अर्थों का परिगणन नहीं। धातु तो अनेकार्थ हैं ऐसा वैयाकरण-सिद्धान्त है—

क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकैकोऽर्थो निदर्शितः।
प्रयोगतोऽनुगन्तव्या अनेकार्था हि धातवः॥

लट्

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०पु०	**भवति** वह है	**भवतः** वे दो हैं	**भवन्ति** (८) वे हैं
म०पु०	**भवसि** तू है	**भवथः** तुम दो हैं	**भवथ** तुम हो
उ०पु०	**भवामि** (६) मैं हूँ	**भवावः** हम दो हैं	**भवामः** हम हैं

१०—लुङ्, लङ्, लृङ् के परे होने पर अङ्ग को अट् (अ) आगम होता है जो उस का पूर्वावयव बन जाता है। यदि अङ्ग अजादि (स्वरादि) हो तो आट् (आ) आगम होता है।[1]

११—आट् और अगले अच् (स्वर के स्थान में वृद्धि (आ, ऐ, औ) एकादेश होता है।[2]

भू लङ्। अ भू लङ्। अ भू त्। अ भू अ त् (७)। अ भो अ त् (२)। अभवत् (अवादेश)। अ भू अ स्। अ भो अ स् (अभवस्) अभवः। पदान्त स् को र् और र् को विसर्ग। अभव अन्। अभवन् (८)। अभव अम्। अभवम् (६)। **अट् वा आट् का आगम नित्य है और लङ् आदि के आते ही धातु से पूर्व लगा दिया जाता है। इस आगम के किए जाने के पश्चात् ही उपसर्ग लगाया जाता है, पहले नहीं।** अनु-भू—अनु अभवत्=अन्वभवत् (उ को यण्)। परि-भू—परि अभवत्=पर्यभवत्। परा-भू—परा अभवत्=पराभवत्। सम्-भू—सम् अभवत्=समभवत्। प्र-भू—प्र अभवत्=प्राभवत्। ऐसा ही सब धातुओं के विषय में जानें।

लङ्

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र० पु०	**अभवत्** वह था	**अभवताम्** वे दो थे	**अभवन्** (८)वे थे
म० पु०	**अभवः** तू था	**अभवतम्** तुम दो थे	**अभवत** तुम थे
उ० पु०	**अभवम्** (८) मैं था	**अभवाव**(६)हम दो थे	**अभवाम**(६)हम थे

भू लोट्। भू ति। भू अ ति। भू अ तु। भवतु। भू अ अन्तु। भवन्तु (८)। भू अ सि। भू अ हि। भवहि। भव(हि का लुक्)। भू मि। भू अ मि।

१. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (६।४।७१)। आडजादीनाम् (६।४।७२)।
२. आटश्च (६।१।६०)।

भू अ नि। भू अ आ नि। भवानि। अन्तर् भवानि=अन्तर्भवाणि। यहाँ उपसर्गस्थ निमित्त से लोट्-सम्बन्धी आनि के न् को ण् होता है।[1] णत्व विधि के लिए अन्तर् जो उपसर्ग नहीं, उपसर्ग मान लिया जाता है।[2] वेद में उपसर्ग का व्यवहित प्रयोग होने से णत्व नहीं हुआ—**कदा न्वन्तर् वरुणे भुवानि** (=भवानि), मैं कब वरुण में लीन होऊँ ? (ऋ० ७।८६।२)।

लोट्

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र० पु०	**भवतु—भवतात्** वह हो	**भवताम्** वे दो हों	**भवन्तु** (८) वे होवें
म० पु०	**भव—भवतात्** तू हो	**भवतम्** तुम दो हो	**भवत** तुम होवो
उ० पु०	**भवानि** मैं होऊँ	**भवाव** हम दो होवें	**भवाम** हम होवें

भो अ इत्। भव इत्। भवेत्। भू उस्। भू यास् उस् भू अ यास् उस्। भू अ यास् उस्। भू अ इय् उस्। भो अ इय् उस्। भवेयुः। भू अम्। भू यास् अम्। भू अ यास् अम्। भू अ इय् अम्। भो अ इयम्। भवेयम्।

विधिलिङ्

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र० पु०	**भवेत्** उसे होना चाहिये	**भवेताम्** उन दो को होना चाहिये	**भवेयुः** उन्हें होना चाहिये
म० पु०	**भवेः** तुझे होना चाहिये	**भवेतम्** तुम दो को होना चाहिये	**भवेत** तुम्हें होना चाहिये
म० पु०	**भवेयम्** मुझे होना चाहिये	**भवेव** हम दो को होना चाहिये	**भवेम** हमें होना चाहिये

जि जये (जीतना, उत्कृष्ट होना) परस्मै०

	लट्			लङ्		
१.	**जयति**	**जयतः**	**जयन्ति**	**अजयत्**	**अजयताम्**	**अजयन्**
२.	**जयसि**	**जयथः**	**जयथ**	**अजयः**	**अजयतम्**	**अजयत**
३.	**जयामि**	**जयावः**	**जयामः**	**अजयम्**	**अजयाव**	**अजयाम**

	लोट्			विधिलिङ्		
१.	**जयतु**	**जयताम्**	**जयन्तु**	**जयेत्**	**जयेताम्**	**जयेयुः**

---

१. आनि लोट् (८।४।१६)।

२. अन्तः शब्दस्याङ्-किविधि-णत्वेषूपसर्गवद्वृत्तिर्वाच्या (वा०)।

	—जयतात्					
२.	जय जयतात्	जयतम्	जयत	जयेः	जयेतम्	जयेत
३.	जयानि	जयाव	जयाम	जयेयम्	जयेव	जयेम

सर्वत्र शप् परे होने पर धातु के 'इ' को 'ए' गुण हुआ है, जिसे अच् परे रहते अय् आदेश हुआ है।

जि जीतना (अभिभव) अर्थ में सकर्मक है—**शत्रुं जयति**। उत्कृष्ट होने अर्थ में अकर्मक है—**स जयति परिणद्धः शक्तिभिः शक्तिनाथः** (मालती० ५।१)।

क्षि क्षिये (क्षीण होना) परस्मै०

	लट्			लङ्		
१.	क्षयति	क्षयतः	क्षयन्ति	अक्षयत्	अक्षयताम्	अक्षयन्
२.	क्षयसि	क्षयथः	क्षयथ	अक्षयः	अक्षयतम्	अक्षयत
३.	क्षयामि	क्षयावः	क्षयामः	अक्षयम्	अक्षयाव	अक्षयाम

	लोट्			विधिलिङ्		
१.	क्षयतु —क्षयतात्	क्षयताम्	क्षयन्तु	क्षयेत्	क्षयेताम्	क्षयेयुः
२.	क्षय— क्षयतात्	क्षयतम्	क्षयत	क्षयेः	क्षयेतम्	क्षयेत
३.	क्षयाणि	क्षयाव	क्षयाम	क्षयेयम्	क्षयेव	क्षयेम

श्रिञ् सेवायाम् (आश्रय लेना) उभयपदी

	लट् परस्मै०			लट् आत्मने०		
१.	श्रयति	श्रयतः	श्रयन्ति	श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते
२.	श्रयसि	श्रयथः	श्रयथ	श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे
३.	श्रयामि	श्रयावः	श्रयामः	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे

	लङ् परस्मै०			लङ् आत्मने०		
१.	अश्रयत्	अश्रयताम्	अश्रयन्	अश्रयत	अश्रयेताम्	अश्रयन्त
२.	अश्रयः	अश्रयतम्	अश्रयत	अश्रयथाः	अश्रयेथाम्	अश्रयध्वम्
३.	अश्रयम्	अश्रयाव	अश्रयाम	अश्रये	अश्रयावहि	अश्रयामहि

लोट् परस्मै०			लोट् आत्मने०		
१ श्रयतु-श्रयतात्	श्रयताम्	श्रयन्तु	श्रयताम्	श्रयेताम्	श्रयन्ताम्
२ श्रय-श्रयतात्	श्रयतम्	श्रयत	श्रयस्व	श्रयेथाम्	श्रयध्वम्
३ श्रयाणि	श्रयाव	श्रयाम	श्रयै	श्रयावहै	श्रयामहै

विधिलिङ् परस्मै०			विधिलिङ् आत्मने०		
१ श्रयेत्	श्रयेताम्	श्रयेयुः	श्रयेत	श्रयेयाताम्	श्रयेरन्
२ श्रयेः	श्रयेतम्	श्रयेत	श्रयेथाः	श्रयेयाथाम्	श्रयेध्वम्
३ श्रयेयम्	श्रयेव	श्रयेम	श्रयेय	श्रयेवहि	श्रयेमहि

श्रि के रूपों में जि की तरह सर्वत्र शप् परे रहते गुण (ए) हुआ है। 'ए' को सर्वत्र अय् शप् (अ) परे होने पर। शप् के 'अ' और उससे परे प्रत्यय के आदि इ, ई के स्थान में गुण-रूप एकादेश हुआ है। पदान्त न् को ण् नहीं होता, अतः 'श्रयेरन्' में नहीं हुआ निमित्त के होने पर भी।

१२—धातु के आदि ष् के स्थान में स् आदेश होता है[1]। पाणिनि मुनि ने व्यवस्था द्वारा कुछेक धातुओं को **षोपदेश** पढ़ा था, ताकि इण् से परे उनके ष् के स्थान में आदेश-भूत सकार को षकार हो सके। आगमभ्रंश से वह व्यवस्थित पाठ नहीं रहा। अतः कौन-कौन धातुएँ षोपदेश हैं इसे लक्षण-द्वारा कहा जाता है—

सेक्-सृप्-सृ-स्तृ-सृज्-स्तृ-स्त्यान्ये दन्त्याजन्तसादयः।
एकाचः षोपदेशाः ष्वष्क् स्विद्-स्वद्-स्वञ्ज्-स्वप्-स्मिङः॥

ऐसी सादि(सकारादि) धातुएँ जिनके स् से परे अच् आता है अथवा शुद्ध दन्त्य वर्ण है वे षोपदेश हैं। इस लक्षण से अतिव्याप्ति के वारण के लिए कारिका में कह दिया है कि सेक् आदि स्त्यै पर्यन्त धातु षोपदेश नहीं हैं, यद्यपि ये सादि हैं और इनके स् से परे अच् अथवा दन्त्य वर्ण (त्) है। अव्याप्ति को वारण करने के लिए ष्वष्क् आदि स्मिङ् पर्यन्त धातुओं को पढ़ दिया है। ये षोपदेश ही मानी जाती हैं। लक्षण के अनुसार साध् जो सादि पढ़ी है षोपदेश ही जाननी चाहिए।

---

१. धात्वादेः षः सः (६।१।६४)।

ष्मिङ् ईषद्धसने (मुस्कराना) आत्मने०

लट्			लङ्		
१ **स्मयते** (१२)	**स्मयेते**	**स्मयन्ते** (२)	**अस्मयत**	**अस्मयेताम्**	**अस्मयन्त**
२ **स्मयसे**	**स्मयेथे**	**स्मयध्वे**	**अस्मयथाः**	**अस्मयेथाम्**	**अस्मयध्वम्**
३ **स्मये**	**स्मयावहे**	**स्मयामहे**	**अस्मये**	**अस्मयावहि**	**अस्मयामहि**

लोट्			विधिलिङ्		
१ **स्मयताम्**	**स्मयेताम्**	**स्मयन्ताम्**	**स्मयेत**	**स्मयेयाताम्**	**स्मयेरन्**
२ **स्मयस्व**	**स्मयेथाम्**	**स्मयध्वम्**	**स्मयेथाः**	**स्मयेयाथाम्**	**स्मयेध्वम्**
३ **स्मयै**	**स्मयावहै**	**स्मयामहै**	**स्मयेय**	**स्मयेवहि**	**स्मयेमहि**

विपूर्वक 'स्मि' के विस्मयते, व्यस्मयत, विस्मयताम्, विस्मयेत इत्यादि रूप होंगे। यहाँ 'स्मि' के आदेश-रूप सकार को षत्व नहीं हुआ, कारण कि १३—'साति' प्रत्यय के स् को तथा पद के आदि-भूत स् को जो षत्व प्राप्त होता है वह नहीं होता।[1]

श्वि गतिवृद्ध्योः (जाना, बढ़ना) परस्मै०

लट्			लङ्		
१ **श्वयति**	**श्वयतः**	**श्वयन्ति**	**अश्वयत्**	**अश्वयताम्**	**अश्वयन्**
२ **श्वयसि**	**श्वयथः**	**श्वयथ**	**अश्वयः**	**अश्वयतम्**	**अश्वयत**
३ **श्वयामि**	**श्वयावः**	**श्वयामः**	**अश्वयम्**	**अश्वयाव**	**अश्वयाम**

लोट्			विधिलिङ्		
१ **श्वयतु-श्वयतात्**	**श्वयताम्**	**श्वयन्तु**	**श्वयेत्**	**श्वयेताम्**	**श्वयेयुः**
२ **श्वय-श्वयतात्**	**श्वयतम्**	**श्वयत**	**श्वयेः**	**श्वयेतम्**	**श्वयेत**
३ **श्वयानि**	**श्वयाव**	**श्वयाम**	**श्वयेयम्**	**श्वयेव**	**श्वयेम**

श्वि का प्रयोग प्रायः सूजने अर्थ में आता है, तब इससे पूर्व उद् उपसर्ग भी लगाया जाता है—**सततरुदितेनोदश्वयतां तस्याक्षिणी अम्बया वियुक्तस्य**, निरन्तर रोने से माता से वियुक्त हुए उसकी आँखें सूज गईं। हाँ **उदश्वित्** (लस्सी) में श्वि वृद्धि (बढ़ना) अर्थ में प्रयुक्त हुई है। गति अर्थ अत्यन्त अप्रसिद्ध है। प्रयोग बनाया जा सकता है—**अद्य चिरेणाऽऽश्वः** (आङ्—(श्वि-लुङ्), तुम आज देर से आये हो।

---

१. सात्-पदाद्योः (८।३।१११)।

णीञ् प्रापणे (ले जाना) उभयपदी

लट् परस्मै०			लङ् परस्मै०		
१ नयति	नयतः	नयन्ति(२)	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
२ नयसि	नयथः	नयथ	अनयः	अनयतम्	अनयत
३ नयामि	नयावः	नयामः	अनयम्	अनयाव	अनयाम

लोट् परस्मै०			विधिलिङ् परस्मै०		
१. नयतु-नयतात्	नयताम्	नयन्तु	नयेत्	नयेताम्	नयेयुः
२ नय-नयतात्	नयतम्	नयत	नयेः	नयेतम्	नयेत
३ नयानि	नयाव	नयाम	नयेयम्	नयेव	नयेम

लट् आत्मने०			लङ् आत्मने०		
१ नयते	नयेते	नयन्ते	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
२ नयसे	नयेथे	नयध्वे	अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्
३ नये	नयावहे	नयामहे	अनये	अनयावहि	अनयामहि

लोट् आत्मने०			विधिलिङ् आत्मने०		
१ नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
२ नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
३ नयै	नयावहै	नयामहै	नयेय	नयेवहि	नयेमहि

१४—णीञ् णोपदेश है। णोपदेश धातु के आदि ण् को न् हो जाता है।[1] नर्द्, नाटि, नाथ्, नाध्, नन्द्, नक्क्, नॄ, नृत्—इन्हें छोड़कर शेष नकारादि पढ़ी हुई धातुएँ णोपदेश हैं। उपदेश आद्य उच्चारण को कहते हैं। आद्य उच्चारण से अभिप्राय आचार्य के मुख से उच्चारित धातु सूत्र, गणादि से है। घटादि नट् (जिसे दीर्घ नहीं होता) णोपदेश ही है। कुछ लोग नाध्, नॄ और नन्द् को णोपदेश मानते हैं।

१५—जो धातु णोपदेश है उसके 'न्' को ण् हो जाता है उपसर्गस्थ निमित्त से, चाहे समास हुआ हो चाहे न।[2]

प्र-नी—प्रणयति। परि-नी—परिणयति। प्र-नदति—प्रणदति। परिणदति। यहाँ असमास मे णत्व हुआ है। प्रणीत। परिणीत। प्रणदित। परिणदित। यहाँ समास में। पर प्रनर्दति—यहाँ णत्व नहीं होगा। नर्द् णोपदेश नहीं।

---

१. णो नः (६।१।६५)।
२. उपसर्गादसमासेपि णोपदेशस्य (८।४।१४)।

डीङ् विहायसा गतौ (आकाश में जाना, उड़ना) आत्मने०

	लट्			लङ्	
१ **डयते**	**डयेते**	**डयन्ते**	**अडयत**	**अडयेताम्**	**अडयन्त**
२ **डयसे**	**डयेथे**	**डयध्वे**	**अडयथाः**	**अडयेथाम्**	**अडयध्वम्**
३ **डये**	**डयावहे**	**डयामहे**	**अडये**	**अडयावहि**	**अडयामहि**

धात्वर्थ-निर्देश में 'विहायसा' में अधिकरण में करणत्व की विवक्षा करके तृतीया हुई है। ऐसा ही वाग्व्यवहार है।

	लोट्			विधिलिङ्	
१ **डयताम्**	**डयेताम्**	**डयन्ताम्**	**डयेत**	**डयेयाताम्**	**डयेरन्**
२ **डयस्व**	**डयेथाम्**	**डयध्वम्**	**डयेथाः**	**डयेयाथाम्**	**डयेध्वम्**
३ **डयै**	**डयावहै**	**डयामहै**	**डयेय**	**डयेवहि**	**डयेमहि**

इस धातु का प्रायः उद् उपसर्ग-पूर्वक प्रयोग होता है। केवल का अति-विरल। दूसरे उपसर्ग भी आते हैं।

उद् डयते—उड्डयते। उद् डयताम्—उड्डयताम्। उद् अडयत—उदडयत। इत्यादि। यहाँ तवर्ग (द्) को टवर्ग (ड्) के योग में टवर्ग हुआ है। इसे शास्त्र में '**ष्टुत्व**' विधि कहते हैं।

द्रु गतौ (जाना, भागना, द्रव-द्रव्य का चलना, बहना) परस्मै०

	लट्			लङ्	
१ **द्रवति**	**द्रवतः**	**द्रवन्ति** (२)	**अद्रवत्**	**अद्रवताम्**	**अद्रवन्**
२ **द्रवसि**	**द्रवथः**	**द्रवथ**	**अद्रवः**	**अद्रवतम्**	**अद्रवत**
३ **द्रवामि**	**द्रवावः**	**द्रवामः**	**अद्रवम्**	**अद्रवाव**	**अद्रवाम**

	लोट्			विधिलिङ्	
१ **द्रवतु-द्रवतात्**	**द्रवताम्**	**द्रवन्तु**	**द्रवेत्**	**द्रवेताम्**	**द्रवेयुः**
२ **द्रव-द्रवतात्**	**द्रवतम्**	**द्रवत**	**द्रवेः**	**द्रवेतम्**	**द्रवेत**
३ **द्रवाणि**	**द्रवाव**	**द्रवाम**	**द्रवेयम्**	**द्रवेव**	**द्रवेम**

यहाँ सर्वत्र शप् परे रहते धातु के (उ) को गुण (ओ) हुआ है। 'द्रवाणि' में एक ही पद में वर्तमान र् से परे अट्-कृत व्यवधान होने पर भी णत्व हुआ है। ऐसा ही सर्वत्र जानें। **रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति** (गीता), डरे हुए राक्षस दिशाओं में दौड़ रहे हैं। **द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः**

(उ० रा० च०) द्रवति=स्यन्दते। **ततः किरीटी सहसा पाञ्चालसमरेऽद्रवत्,** तब अर्जुन पाञ्चाल के साथ युद्ध में टूट पड़ा।

विपूर्वक द्रु का भागना अर्थ भी होता है। और पिघलना भी। प्र-द्रु का विघ्नित करना, ऊपर आ पड़ना भी। इस अर्थ में यह सकर्मक हो जाती है।

विद्रवति। व्यद्रवत्। विद्रवतु। विद्रवेत्। इत्यादि।

इसी प्रकार दु गतौ (जाना), ध्रु स्थैर्ये (स्थिर होना), षु (सु प्रसवैश्वर्ययोः (अनुज्ञा देना, अधिकार रखना), स्रु गतौ (बहना) के रूप जानो।

१६—श्रु धातु को कर्तृवाचक सार्वधातुक परे होने पर 'शृ' आदेश होता है और इस के साथ ही शप् के स्थान में श्नु प्रत्यय होता है। श्नु में श् इत्संज्ञक है।

१७—जुहोति (हु) के 'उ' को तथा श्नुप्रत्ययान्त अनेकाच् असंयोग-पूर्व-उवर्णान्त जो अङ्ग उसके 'उ' को यण् आदेश होता है अजादि सार्वधातुक परे होने पर। उवङ् (उव्) प्राप्त था।[1] श्रु ति। शृ श्नु ति। शृ नु ति। शृणोति। श्नु प्रत्यय अपित् सार्वधातुक है और अपित् सार्वधातुक ङित्वत् होता है अतः शृ को गुण नहीं हुआ (५)। पर आगे तिप् (पित् सार्वधातुक) होने से 'नु' को गुण हुआ है (२)। शृणुतः। यहाँ तस् प्रत्यय के अपित् होने से अङ्ग के इक् (उ) को गुण नहीं हुआ (५)। श्रु अन्ति। शृ नु अन्ति। शृण्वन्ति। यहाँ 'उ' के स्थान में यण् (व्) हुआ है। (१७)

१८—ऐसे उकारान्त प्रत्यय, जिसके 'उ' से पूर्व संयोग नहीं, से परे लोट्-सम्बन्धी हि का लुक् हो जाता है।[2] शृणु। पर आप्नुहि। यहाँ उ से पूर्व प्, न् का संयोग है, अतः 'हि' का लुक् नहीं हुआ।

१९—ऐसे उकारान्त प्रत्यय, जिसके 'उ' से पूर्व संयोग न हो, से परे जब मकारादि वकारादि प्रत्यय हो तब उसके 'उ' का विकल्प से लोप हो जाता है[3]—शृणुमः। शृण्मः। शृणुवः। शृण्वः।

श्रु श्रवणे (सुनना) परस्मै०

	लट्			लङ्	
१ शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्

---

१. हुश्नुवोः सार्वधातुके (६।४।८७)।

२. उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् (६।४।१०६)।

३. लोपश्चान्यतरस्यां म्वोः (६।४।१०७)।

२	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
३	शृणोमि	शृणुवः / शृण्वः (१९)	शृणुमः / शृण्मः	अशृणवम् (२)	अशृणुव / अशृण्व (१९)	अशृणुम / अशृण्म

लोट्   *विधिलिङ्*

१	शृणोतु-शृणुतात्	शृणुताम्	शृण्वन्तु	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
२	शृणु-शृणुतात् (१८)	शृणुतम्	शृणुत	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
३	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लोट् सम्बन्धी आनि, आव, आम में आट् आगम के पित् होने से आव और आम भी पित् हो गये (मिप् के स्थान में नि तो पहले से ही स्थानिवद्भाव से पित् है), कारण कि **आगम आगमी का अवयव बन जाते हैं, सो आनि आव, आम आगम सहित प्रत्यय ही हैं और आगम धर्म से पित् हैं।** अतः यहाँ उ० पु० के तीनों वचनों में अङ्ग (शृणु) को गुण होता है। गुण (ओ) होकर अवादेश हो जाता है।

विधिलिङ् में यासुट् (यास्) आगम परे रहते अङ्ग के अदन्त न होने से यास् को इय् नहीं होता। 'शृणुयुः' में यास् के स् का लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य (७।२।७९) से लोप हो जाता है। अदन्त अङ्ग न होने से 'या' को इय् नहीं होता। उस् परे रहते उस्यपदान्तात् (६।१।९६) से पररूप एकादेश हो जाता है—या उस्=युस्।

च्युङ् गतौ (गिरना) आत्मने०

लट्   *लङ्*

१	च्यवते (२)	च्यवेते	च्यवन्ते	अच्यवत	अच्यवेताम्	अच्यवन्त
२	च्यवसे	च्यवेथे	च्यवध्वे	अच्यवथाः	अच्यवेथाम्	अच्यवध्वम्
३	च्यवे	च्यवावहे	च्यवामहे	अच्यवे	अच्यवावहि	अच्यवामहि

लोट्   *विधिलिङ्*

१	च्यवताम्	च्यवेताम्	च्यवन्तम्	च्यवेत	च्यवेयाताम्	च्यवेरन्

'अपस्मरत्यपस्मारे'[1] '**विरेके** तु विरिच्यते' ।
कर्मकर्तर्यसौ तत्र भवेदतिसरत्यपि[2] ॥१३३॥
वान्तौ वमत्युद्गिरति छर्दयत्युद्गिलत्यपि ।
निष्ठीव्यतीति **थूत्कारे** द्वयं निष्ठीवतीत्यपि ॥१३४॥
शेषे 'परिशिनष्टीति **द्वितयं** शेषयत्यपि' ।
तृप्तौ तृप्यति तृप्नोति सुहितो भवतीत्यपि ॥१३५॥
विश्राम्यतीति **विश्रान्तौ** क्वचिद्विश्रमते[3] मतम् ।
आस्ते निविशते[4] चोपविशत्यत्र निषीदति ॥१३६॥
ऊर्ध्वीभवति चोत्तिष्ठत्यूर्ध्वत्वे तिष्ठतीत्यपि' ।
अनक्रामति पर्येति परीयत[5] इति **क्रमे**' ॥१३७॥
'**आदाने** स्वीकरोत्यत्र गृह्णात्यप्यात्मने द्वयम् ।
उपादत्ते गृह्यते लाति **षट्** स्युः प्रतीच्छति' ॥१३८॥
त्यागे त्यजत्युत्सृजति जहात्युज्झति मुञ्चति ।
उत्सृजति विसृजति मुञ्चते रहयत्यपि ॥१३९॥
आत्मने स्यात्परिहरत्यत्र मोक्षयतीत्यपि ।
वर्जने वारयत्यत्र स्यान्निवारयतीति च ॥१४०॥
तथा वृणक्ति वृङ्क्ते च व्यासेधति निषेधति ।
वर्जयत्यपि **सप्तैताः**' '**वरणे** वरयत्यदः' ॥१४१॥
वावृत्यते[6] वृणोतीति वृणातीत्यात्मनेऽप्युभे ।

---

१. सोऽपस्मरति, साऽस्य पित्र्या रुक् । उसे मिरगी पड़ती है, यह रोग उसे पिता से आया है । अप-स्मृ=मिरगी का रोगी होना ।

२. अतिसरति—इस रूप में शिष्टप्रयोग नहीं । सुश्रुत में अतिसार्यते (अति-सृ-णिच् यक्) इस रूप में मिलता है ।

३. वि श्रम् न तो भ्वादिगणीय है और न आत्मनेपदी ।

४. नि-विश् का ठीक आसन ग्रहण करना अर्थ नहीं, किन्तु टिकना, ठहरना, बसना है ।

५. परि ईङ् दिवा० आ० ।

६. वावृतु—कोई लोग पत (तप) ऐश्वर्ये वा इस पूर्व धातु के अर्थ-निर्देश में पढ़े हुए 'वा' को 'वृतु' के साथ जोड़कर 'वावृतु' धातु मानते हैं । भट्टि उन में से एक है ।

'आधत्ते[1] च निधत्ते च निदधात्यादधाति च ॥१४२॥
'आरोपयत्यर्पयति (न्यस्य) तीति **तथार्पणे**'।
विन्यस्यतीति **तद्भेदे** संनिवेशयतीत्यपि ॥१४३॥
करोति हस्तेपाणिभ्यां कुरुते[2] चोपयच्छते।
विवहत्युद्वहति **चोद्वाहे** परिणयत्यपि ॥१४४॥
चत्वारि वात्मने '**ज्येष्ठेऽनूढे** च परिविन्दति'।
'परिष्वजत आश्लिष्यत्यालिङ्गत्युपगूहति।
क्रोडीकरोत्यात्मने द्वावङ्कपालयतीति च ॥१४५॥
सप्त स्युः परिरम्भे परिरभते' 'ऽप्यथ **रिरंसायाम्**।
कामयतेऽत्र वृषस्यति रिरंसते चेत्परं योषित्' ॥१४६॥
'अश्वस्यति तु यद्यश्वा' '**चुम्बने** चुम्बतीत्यदः।
'व्यवैति[4] संविशत्यत्र[5] निधुवत्यपि **मैथुने** ॥१४७॥
मिथुनीभवतीत्यत्र संप्रयुङ्क्ते यभत्यपि'।
'उपभुङ्क्ते **तूपभोगे** संभुङ्क्ते निर्विशत्यपि' ॥१४८॥
प्रसूयते प्रसूते च **गर्भमोक्षे** विजायते[6]।
प्रजायते जनयति प्रसौतीति **षडीरिताः** ॥१४९॥
शूलत्यामयतीत्यत्र रुजत्यत्र **रुजि त्रयम्**।
'उल्लाघयति **भैषज्ये** भिषज्यति चिकित्सति'।
उपबर्हत्युपदधात्यात्मनेऽप्युपबर्हणे ॥१५०॥

इति मनुष्यचेष्टावर्गः।

'**शौचे** नेनिक्ते नेनेक्ति प्रक्षालयति धावति।
धावते शोधयति च' **तद्भेदे** मार्ष्टि मार्जति ॥१५१॥
अत्रोपसंस्करोतीति **चतस्रो** मार्जयत्यपि।

---

१. आधि (धरोहर) रूप से रखता है, ऐसा अर्थ है।

२. हस्ते करोति, पाणौ करोति=उद्वहति=उपयच्छते (उप-यम्)।

३. अङ्कपालीं करोति। अङ्कपाली=आलिङ्गन, गोद।

४. वि अव इण्। व्यवाय (पुं०)=मैथुन।

५. संविशेदार्तवे स्त्रियम् (मनु० ३।४८)।

६. समां समां विजायते समांसमीना गौः। जो गौ प्रतिवर्ष ब्याहती है।

'**पावित्र्ये** तु पुनातीति पुनीते पवतेऽपि च' ॥१५२॥
शुध्यतीति **शुचीभावे** विशुध्यत्यवदायति ।[1]
'**स्नाने** तु स्नायति स्नाति' '**तद्विशेषे** तु मज्जति[2] ।
ब्रुडत्याप्लवते चात्र **स्युश्चतस्रो**ऽवगाहते' ॥१५३॥
उपस्पृशति चाचामत्युभे **आचमनात्मके** ।
आभिमुख्यागमेऽभ्येति[3] तथाभ्यायाति च **द्वयम्** ॥१५४॥
'**प्राघुणत्यतिथीभावे** तथाऽभ्यागच्छतीत्यपि' ।
अभिवादयति **प्रणतावुपसंगृह्णाति**[4] चात्मने द्वितयम् ।
नमति नमस्यति **षट्** स्युः प्रणिपतति वन्दते चात्र ॥१५५॥
'अथार्घत्यञ्चति यजत्यपचायति चात्मने ।
चतस्रः पूजयत्यत्र महयत्यर्हयत्यपि ॥१५६॥
सभाजयत्यर्चयते महत्याराधयत्यपि ।
सपर्ययति चाराध्नोत्याराध्यति तथार्हति ॥१५७॥
मानयत्यपि **पूजायाम्**' '**आदरे** सत्करोति च ।
संमन्यते चाद्रियते तथा संभावयत्यपि' ॥१५८॥
शुश्रूषते परिचरत्युपास्ते वरिवस्यति ।
चतस्रः परिचर्यायाम्'...... ॥१५९॥
'यजत्यपि **सुरार्चाया**' 'मथ विश्रमयत्यपि ।
संवाहयति चात्र **द्वे पादाद्यङ्गोपमर्दने**' ॥१६०॥
'**दाने** ददाति दत्ते च ददते वितरत्यपि ।
प्रयच्छत्यर्पयति च दिशते दिशति क्वचित् ॥१६१॥

---

१. अव दैप् शोधने भ्वादि, यह सकर्मक है। यहाँ स्नान अर्थ में इस का न्यास ठीक नहीं।

२. मज्जति, ब्रुडति, आप्लवते=डुबकी लगाता है।

३. अभि इण्। अपनी ओर (इधर ही) आना।

४. उपसम्-ग्रह्=चरण पकड़ना। नमस्कार अर्थ नहीं है। जैसे 'गुरुं नमति' कहते हैं वैसे 'गुरुमुपसंगृह्णाति नहीं कह सकते। 'चरण'-कर्मक प्रयोग होगा। पूजा में जो 'सपर्ययति' पढ़ा है वहाँ कण्ड्वादि यगन्त से स्वार्थ में णिच् किया है, वह व्यर्थ है।

अपवर्जयति स्पर्शयति विश्राणयत्यपि ।
तथा विलभते[1] राति प्रतिपादयतीत्यपि' ॥१६२॥
'जुहोति **हविषामग्नौ प्रक्षेपे** त्रितयं मतम् ।
स्वाहा-वौषड्वषड्भ्यश्च करोति कुरुतेऽपि च' ।
'**प्रक्षेपे** तु प्रतिवश (स) त्यत्र प्रक्षिप्यतीति च ॥१६३॥
मिनोत्यात्मनेऽपि स्युश्चतस्रः प्रक्षिपत्यपि ।
विक्षिपत्यात्मनेऽपि स्या**द्विक्षेपे** विक्षरत्यदः' ॥१६४॥
आमन्त्रणे केतयति निमन्त्रयत इत्यपि ।
अत्रामन्त्रयते' चाथ '**तर्पणे** धिनुतेऽवति ॥१६५॥
धिनोति प्रीणयति च **पञ्च** तर्पयतीत्यपि' ।
अनुज्ञायास्तु करणेऽनुजानात्यनुमन्यते ॥१६६॥
धापयत्यात्मनेऽपि द्वौ **धापने** पाययत्यमू ॥
द्वयं यामयतीत्यत्र परिवेवेष्टि चात्मने ॥१६७॥
'पिपर्ति पूरयति च पारयत्यपि **पूरणे** ।
अत्राप्याययति प्राति प्रीणातीत्य' थ '**तोषणे** ॥१६८॥
सुखाकरोति सुखयत्याह्लादयति चेत्यपि ।
धिनोत्यानन्दयति च मृडयत्यादयस्तथा' ॥१६९॥
'**अभुक्तौ** तूपवसतिर्लङ्घते व्रतयत्यपि' ।
तप्यते तु **तपस्यायां** तपस्यत्यप्युभे क्रिये ॥१७०॥
करोति कुरुते **मौण्ड्ये** भद्राभद्रापुरःसरे[2] ।
मुण्डयत्यत्र वपति तथा मुण्डयतेऽपि च ॥१७१॥
'उपेक्षते तथोदास्ते **पदे माध्यस्थ्यवाचिनी**' ।
'स्युर्विरज्यत्युपरमत्यात्मने विरजत्यमूः ॥१७२॥
उपशाम्यति **वैराग्ये** तथा निर्विद्यतेऽपि च' ।
'मुमुक्षते **मुमुक्षायाम्** अमृतीयति मोक्षते ॥१७३॥
प्रत्यञ्चति[3] समाधत्ते निर्विकल्पीभवत्यपि' ।
परिव्रजति **संन्यासे** संन्यस्यत्यात्मनेप्यदः ॥१७४॥

---

१. विलाभस्त्ववतिसर्जनम् (अमर) । तिङन्त रूप में प्रयोग दुर्लभ है ।
२. भद्राकरोति==**मुण्डयति** ।
३. प्रति अञ्च् का अर्थ अन्दर की ओर जाना है, पीछे को लौटना है । यह अर्थ 'प्रत्यगात्मन्' पद में अभिव्यक्त है । इसी अर्थ में यहाँ 'समाधत्ते'

ब्रह्मीभवति **कैवल्ये**[1] निर्वातीति[2] **चतुष्टयम्** ।
कर्मकर्तरि तत्र द्वे मुच्यते चापवृज्यते[3] ॥१७५॥
इति ब्रह्मक्रियावर्गः ॥

'**ऐश्वर्ये** इन्दतीष्टे च तप्य[4]तेऽधीष्ट इत्यपि ।
प्रतिष्ठाप्तौ तु विख्याति प्रख्याति प्रतितिष्ठति ॥१७६॥
'**रक्षणे** त्रायते पाति गोपायति भुनक्ति च ।
पिपर्ति रक्षति तथा पालयत्यवतीति च ॥१७७॥
शास्ति '**शिष्टौ** शिक्षयति' '**दण्डे** दण्डयतीत्यदः ।
दाम्यत्य'[5] 'थ **वशीकारे** धारयत्यात्मनेऽपि च ॥१७८॥
तथा वशीकरोतीति संगृह्णाति च पूर्ववत् ।
'प्रपद्यते[6] तु **शरणागतौ** शरणयत्यपि' ।
'**स्थिरीकृतौ** स्थापयति तथा द्रढयतीत्यपि ॥१७९॥
'**धारणार्थे** धारयति दधाति च बिभर्ति च ।
द्वे आत्मने च दधते धरतीति च **पञ्चकम्**' ॥१८०॥
'नियुङ्क्ते आज्ञापयति निदिशत्यादिशत्यपि ।
द्वावात्मनेऽपि **चाज्ञायाम्**' 'अथ प्रस्थापयत्यपि ॥१८१॥
प्रेषणे प्रेषयति च प्रेष्यति प्रहिणोति च' ।

पढ़ा है । सम् आङ् धा प्रायः चित्त को एकाग्र करना, चिन्तन करना अर्थ में प्रयुक्त होती है ।

१. केवलस्य भावः कैवल्यम् पृथग्भावः=निस्त्रैगुण्यम् ।

२. 'निर्वाति' यहाँ 'निर्वाणो भवति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इस अर्थ में क्तान्त (निर्वाण) का ही प्रयोग व्यवहारानुगत है ।

३. अप वृज्—कर्मकर्तरि यक् । स्मृतियों में इसका प्रचुर प्रयोग है । अपवर्ग=कैवल्य ।

४. तप ऐश्वर्ये वा—ऐसा धातुपाठ स्वीकार करके यहाँ 'तप्यते' पढ़ा है । वस्तुतः पत ऐश्वर्ये वा ऐसा पाठ होना चाहिये । यह हमने दिवादिगण में इस धातु के विषय में सप्रमाण स्पष्ट किया है, वहीं देखें ।

५. दम् दिवा० सकर्मक है । दम् का अर्थ वश में करना है । दान्तः=जितेन्द्रियः । दान्तोऽश्वः, सिधाया हुआ घोड़ा ।

६. अत एव प्रपत्तिः शरणागतिः ऐसा कोषकार पढ़ते हैं ।

संदेशे वाचिकयते[1] संदिशत्यात्मनेऽपि च ॥१८२॥
'लिखत्य**क्षरविन्यासे** तथा लिपयति[2]' **द्वयम्** ।
प्रेरणे प्रेरयत्यत्र क्षिपतीत्यात्मनेऽपि च ॥१८३॥
कालयत्यस्यति तथा नुदतीति **पञ्चकम्** ।'
'सेवतेऽनुसरत्यत्र भजति श्रयतीति च ॥१८४॥
आत्मनेऽनुरुणद्धीति तिस्र एवानुवर्तते ।
अनुजीवति **सेवायां** जुषतेऽनुचरत्यपि' ॥१८५॥
'वृणीते इति **संभक्तौ**[3] वलतीत्यात्मनेऽपि च' ।
प्रापणे लम्भयत्यत्र हरत्यपि नयत्यपि ।
वहतीत्यात्मनेऽप्येताः प्रापयत्यापयत्यपि ॥१८६॥
ये ण्यन्ता गमनार्थास्ते धातवो णौऽसमार्थकाः ।
विलम्बते कुण्ठति[4] च व्याक्षिपत्यात्मनेपि च ॥१८७॥
मन्दायति[5] चिरयति **विलम्बतेऽथ** 'प्रतीक्षते ।
अनुपालयतीत्यत्र प्रतिपालयतीति च' ॥१८८॥
'प्रतीहारयति[6] **द्वारप्रवेशनविधौ क्रिया**' ।
संभ्राम्यति **त्वरायां** स्यात्त्वरते संभ्रमत्यपि ॥१८९॥
अस्यामाविजते'[7] 'चाथ **वैक्लव्ये** विक्लवत्यपि ।
विह्वलत्यत्र टलति' [अथ **कौटिल्ये**] वङ्कते कुटतीत्यपि ॥१९०॥
भुजति न्युब्जति तथा कुब्जतीति समार्थकम् ।
संवर्मयति संनह्यत्यत्र संनह्यतेऽपि च ॥१९१॥

---

१. वाचिकं करोति, वाचिकमाचष्ट इति । सन्देशवाक्=वाचिकम् ।

२. लिपिं करोतीति । लिपि—णिच् ।

३. संभक्ति=चुनाव, पसन्द करना ।

४. कुण्ठ् भ्वा० प० अतीक्ष्ण होना, धार का मन्द हो जाना । विलम्ब करने अर्थ में धातु की प्रसिद्धि नहीं ।

५. मन्दायते । मन्द से भृशादि होने से क्यङ् । परस्मैपद अशुद्ध है ।

६. प्रतीहारयति=द्वारं प्रवेशयति ।

७. आङ्पूर्वक विज् तुदा० आ० । अत एव आवेग=क्षोभ, व्याकुलता ।

'सज्जयत्यपि **संनाहे** तथा दंशयतेऽप्यदः' ।
'स्फुरति स्पन्दते **स्पन्दे**' '**चलने तु चतुष्टयम्** ॥१६२॥
चलति[1] प्रेङ्खति तथा घट्टते वेल्लतीति च' ।
'उत्सेधति[2] तथोन्नह्यत्युच्छ्रयत्यात्मने द्वयम्' ॥
क्षोभते क्षुभ्यति क्षोभे' '**गमने**ऽञ्चति गच्छति ॥१६३॥
प्रतिष्ठते जिहीते च सरति व्रजतीयते[3] ।
पद्यते याति चरति सर्पत्ययति[4] चञ्चति[5] ॥१६४॥
ऋच्छति प्रवते[6] गाते[7] चलत्येति च टीकते ।
अयते[8] क्रामतीर्यति क्रिया **द्वाविंशतिर्मताः**' ॥१६५॥
'निर्गच्छति तु निर्याति निष्क्रामति निरेति च ।
प्रायो निःसरणार्थाः स्युर्निःपूर्वा गमनार्थकाः ॥१६६॥
तदा त्वागमनार्थाः स्युर्यद्याङ्पूर्वा भवन्त्यमी ।
स्यात्प्रत्यावर्तते प्रत्यायाति व्याघोटते[9]ऽपि च ॥१६७॥
प्रत्याङ्पुरःसराः प्रत्यावृत्तौ स्युर्गमनार्थकाः ।
अनुपूर्वास्त एव स्युः सर्वेऽनुगमनार्थकाः ॥१६८॥

---

१. 'चलति' आदि चार धातुओं का हिलोरे लेना अर्थ है ।

२. उत्सेधति (उद्—सिध् भ्वा० प०) आदि तीन ऊपर को उठना, ऊँचा होना अर्थ में व्यवहृत होती हैं ।

३. ईङ् गतौ दिवा० आ० ।

४. भ्वादि गरा में पढ़ी हुई इट किट कटी धातुओं में से अन्त्य धातु में प्रश्लेष द्वारा 'इ' धातु की कल्पना की जाती है । इ शप् ति=अयति (गुण) । वस्तुतः कवियों के प्रामादिक प्रयोग को समाहित करने का यह यत्नमात्र है ।

५. चञ्च् का अर्थ स्फुरण मात्र है । प्रायः भास्वर पदार्थों के विषय में इस धातु का प्रयोग होता है ।

६. प्रुङ् भ्वा० आ० ।

७. गाङ् अदा० आ० ।

८. अय गतौ भ्वा० आ० ।

९. घुट परिवर्तने भ्वा० आ० । वि आङ् पूर्वक इसका लौटना, लौट आना अर्थ कारिकाकार समझते हैं, इस में प्रमाण मृग्य है ।

अटति[1] स्यान्मृदुगतौ रिङ्गतीङ्गति च **त्रयम्** ।
लङ्घते तु **प्लुतगतौ** लङ्घत्युत्फलतीति[2] च ॥१९९॥
भेदे प्लुतगतेरेव वल्गति प्लवते[3] **द्वयम्** ।
'उड्डीयते तूड्डयते **खगता**वुत्पतत्यपि ॥२००॥
'धावति द्रवति **क्षिप्रगमने** जवतीत्यपि'[4] ।
अटाट्यते चङ्क्रमीति **द्वयं भ्रमणिकाविधौ** ॥२०१॥
'**तद्भेदे** भ्रमति भ्राम्यत्यपि पर्यटतीति च' ।
बंभ्रमीति **तदाधिक्ये** घूर्णते घूर्णतीति च ॥२०२॥
चंचूर्यते[5] जङ्गमीति पनीपद्यत इत्यपि ।
यङन्ता यङ्लुगन्ताश्च गत्यर्थाः कुटिले गमे ॥२०३॥
वलते **परिवृत्तौ** स्याद्‌धोटते परिवर्तते ।
उद्‌गच्छत्युदये **षट्** स्युरुज्जिहीत उदीयते ॥२०४॥
उदञ्च[6]त्युदयत्येतावात्मने द्वावुदेति च ॥
गत्यर्थाः प्राय उत्पूर्वा उदयस्याभिधायकाः ॥२०५॥
उन्मील[7]त्युन्नमति च **मेघाद्यभ्युद्गमे द्वयम्** ।
'स्त्यायतीति[8] प्रसरति **प्रसारे** विसरत्यपि' ॥२०६॥
'**संचारे** संचरत्येतत्तृतीयायुक्तमात्मने' ।
'स्रंसते**ऽधोगतौ** भ्रश्यत्यपि भ्रंशत इत्यपि ॥२०७॥

---

१. अट् का अर्थ मृदु गति स्वीकार किया है और इसे रिङ्ग्, इङ्ग् के साथ समानार्थक पढ़ा है। रिङ्ग् रींगना होता है। अट् का यह अर्थ दुर्लभ है।

२. उत्फलति = छलांग लगाता है। फल् का यह अर्थ धातुपाठ में निर्दिष्ट नहीं, पर पञ्चतन्त्रादि में इस अर्थ में प्रयोग मिलता है।

३. प्लवते, वल्गति—उछल कर चलना अर्थ है, यही प्लुतगति का भेद है।

४. जु—यह सौत्र धातु है। आत्मनेपद में प्रयोग होता है—विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते (ऋ० ३।३३।१)।

५. चर्—यङ्।

६. अञ्चु गतौ याचने च, भ्वा० स्वरितेत्।

७. उन्मीलन्ति मेघाः (उन्नमन्तीत्यर्थः) ऐसा कोई प्रयोग नहीं।

८. स्त्यै ष्ट्यै भ्वा० प०। पर इसका प्रसार (फैलना) अर्थ नहीं है।

पतत्यपि' '**द्रवादेस्तु** क्षरति च्यवते तथा ।
स्कन्दति श्च्योतति तथा स्रवत्यपि गलत्यपि ॥२०८॥
रीयते स्यन्दते चात्र श्चोततीति क्रिया **नव**' ।
विलीयते द्रवति च **कठोरक्षरणे द्वयम्** ॥२०९॥
'**अस्तंगमे**ऽस्तमयते निम्लोचत्यस्तमेति च' ।
'**अन्तर्द्धाने** तिरोन्तर्भ्यामुभे धत्ते दधाति[1] च' ॥२१०॥
'अपक्रामत्यपैतीति नश्यत्यपि पलायते ।
प्रायोऽपपूर्वा गत्यर्था अपयाने प्रकीर्तिताः ॥२११॥
'**पराङ्मुखत्वे** तु परावर्तते च पराञ्चति' ।
'अतिक्रामत्युच्चरते तथातिचरतीत्यपि ॥२१२॥
अत्येत्युल्लङ्घयत्याद्या धातवः **स्युरतिक्रमे** ।
'**निष्कासने** तु निष्क्रामत्यवकर्षति चात्र हि ॥२१३॥
निष्कालयति निःसारयति चेत्यादयः क्रियाः ।
संनिकर्षति[2] तु प्रत्यासीदत्यासीदतीत्यपि ॥२१४॥
परस्मै संनिकृषते संनिधत्ते तु **संनिधौ** ।
'**प्राप्तौ** प्राप्नोति लभते विन्दतेऽनुरुणद्धि[3] च ॥२१५॥
अनुरुन्धे भावयते विन्दत्यासादयत्यपि' ।
'व्याप्नोति व्यश्नुते **व्याप्तौ** वेवेष्टीत्यात्मनेऽपि च' ॥२१६॥
'पर्याप्नोति तु शक्नोति क्षमते प्रभवत्यपि ।
कल्पते पारयति च **सामर्थ्ये**ऽत्र पदानि **षट्**' ॥२१७॥
'**उद्यमे** चावगुरते[4] उद्गूरयत इत्यपि ।
उद्यच्छति तथोद्युङ्क्ते स्युः **पञ्चोद्यच्छते**ऽपि च' ॥२१८॥

---

१. तिरोधत्ते । अन्तर्धत्ते=तिरोहित हो जाता है ।

२. शुद्ध कर्ता में इस अर्थ में प्रयोग दुर्लभ है । कर्मकर्तरि 'संनिकृष्यते' ऐसा कहना चाहिये ।

३. प्राप्ति अर्थ में रुध् का अव-पूर्वक प्रयोग होता है । अनु-पूर्वक नहीं ।

४. उद्यम् का अर्थ उठाना, उद्योग करना है । अव-गुरी तुदा० आ०, गूर् चुरादि मारने के लिये शस्त्रादि उठाने अर्थ में प्रयुक्त होती हैं, उद्योग अर्थ में नहीं । उद्यम् (उद्यच्छति) दोनों में प्रसिद्ध है ।

'**वेष्टने**[1] वेष्टत इति परिक्षिपति चात्मने ।
परिश्रयति चेति द्वे वेष्टयत्यादयोऽपि च' ॥२१६॥
'निरुणद्धि निगृह्णात्यात्मने च **द्वौ निरोधने** ।
जयत्याक्रामति तथा धर्षयत्यपि धर्षति ॥२२०॥
विलङ्घयत्यभिभवत्यपि च न्यक्करोति च ।
तथा विजयते चास्कन्दतीत्य**भिभवे नव**' ॥२२१॥
विशेषयत्य**तिशये** विशिनष्टि प्रकर्षति ।
विशेष[2]त्यतिशेते च तथोत्कर्षयतीति च ॥२२२॥
उत्कृष्यते द्वयं कर्मकर्तर्यत्रातिरिच्यते ।
धूनने कम्पयत्यत्र तथा वेपयतीति च ॥२२३॥
त्रयं धुनोति धूनोति धुनातीत्यात्मनेऽपि च ॥२२४॥
धुवत्येवं धूनयति चलयत्यपि **चाष्टकम्** ।
कम्पे तु कम्पते त्वङ्गत्येजतेऽत्र च वेपते ॥२२५॥
लोलतीति क्रियाः षट् स्युः परिप्लवत[3] इत्यपि ।
आहन्ति ताडयति च **ताडने** जासयत्यपि[4] ॥२२६॥
प्रहरत्यात्मने चाथ' **तर्द्दे** कुट्टयत्यपि ।
आस्फालय[5]त्यर्दयति तथैवाघट्टयत्यपि ॥२२७॥
विध्यति च्छिद्रयत्यत्र **वेधे**' भेदयति त्रयम् ।
आहतेऽकर्मकत्वे स्यात्स्वकीयाङ्गे च कर्मणि ॥२२८॥
'युध्यते संप्रहरते संग्रामयत इत्यपि ॥

---

१. वेष्टन = घेरना ।

२. शिष असर्वोपयोगे चुरादि आधृषीय । णिज्विकल्प ।

३. परिप्लु का हिलना, चञ्चल होना अर्थ यहाँ स्वीकार किया है । यह अर्थ परिप्लव, पारिप्लव कृदन्त शब्दों में तो प्रसिद्ध है, पर तिङन्त रूप में अप्रसिद्ध है । पारिप्लव में स्वार्थ में अण् तद्धित हुआ है ।

४. हिंसायाम् चुरा० । इसका प्रहार करना अर्थ नहीं । उज्जासयति = नष्ट भ्रष्ट करता है ।

५. आस्फाल् धातुपाठ में नहीं पढ़ी । 'बहुलमेतन्निदर्शनम्' इस गणसूत्र के अनुसार चौरादिक मानी जाती है ।

विगृह्णाति विगृह्णीते समरे कलहायते[1]' ।
'पराक्रमे वीरयते पराक्रमत इत्यपि ॥२२९॥
ओजायते शूरयते तथा विक्रमते[2]ऽपि च' ।
'हिनस्ति संज्ञपयति सूदते हन्ति तर्दति ॥२३०॥
प्रमापयत्यर्दयते निबर्हयति हिंसति ।
तृणेढि घातयति च शृणात्युज्जासयत्यपि ॥२३१॥
प्रतिष्किर[3]त्यालभते[4] कषते मारयत्यपि ।
कषत्युन्माथयत्यत्र क्षिणोतीत्यात्मनेऽपि च ॥२३२॥
क्षेणोति द्वे विशसति निस्तर्हयति रध्यति ।
षड्विंशतिः सूदयति हिंसायां हिंसयत्यपि' ॥२३३॥
'कृणोति[5] कृणुते पुथ्यत्यपि क्रथति तुम्फति ।
मीनात्युन्नाटयत्याद्या हिंसायां विरलोदयाः ॥२३४॥
'पीडने तु व्यथयति क्लिश्नाति च दुनोति च ।
तपते ग्लापयत्यत्र बाधते पीडयत्यपि ॥२३५॥
धूपायति ग्लपयति तुदति क्लेशयत्यपि ।
दुःखाकरोत्यात्मनेऽपि तुदते खेदयत्यपि ॥२३६॥
दुःखयत्युत्क्लमयति स्यात्कदर्थयतीत्यपि' ।
'भनक्ति त्रोटयति च रुजत्यामर्दयत्यपि' ॥२३७॥
'क्षुणत्ति[6] अदते क्षुन्ते मृद्नाति च पिनष्टि च ।
संचूर्णयत्यथ' 'ध्वंसयति क्षपयतीत्यपि ॥२३८॥

---

१. कलहायते=कलहं करोति । झगड़ा करता है ।

२. यहाँ आत्मनेपद की प्राप्ति नहीं ।

३. प्रति कॄ । हिंसार्थ में कॄ को सुट् आगम होता है । 'प्रतिस्किरति' ऐसा शुद्ध रूप होगा । षत्व की प्राप्ति नहीं ।

४. आङ् लभ् का पशुयाग में ही प्रयोग होता है । कष् परस्मै० ही है ।

५. कृवि हिंसाकरणयोश्च भ्वा० प० । 'कृणुते' यह प्रामादिक है । कृणोति आदि विरलोदय (विरलप्रयोग) हैं ।

६. क्षुणत्ति=संचूर्णयति । क्षुद् श्नम् ति । क्षुणत्ति आदि का सामान्य पीडन अर्थ नहीं, किन्तु चूर्ण करना अर्थ है ।

नाशने नाशयति च तिस्रो' 'ऽथोन्**मूलने** क्रियाः ।
उन्मूलयत्युत्खनति तथोज्जटयतीति च' ॥२३९॥
'उत्पाटयत्युत्खनते षडुद्धरति चात्मने ।
उल्लुञ्चतीति **केशादेरुत्पाटनविधौ** क्रियाः' ॥२४०॥
'**द्विधाकृतौ** पाटयति फालयत्यंशुकादिनः' ।
'निष्पीडयति निश्च्योतयति निर्गालयत्यपि' ॥२४१॥
वैरशुद्धौ प्रतिकरोत्यत्र निर्यातयत्यपि' ।

इति क्षत्रियचेष्टावर्गः ॥

कर्षणे तु कृषत्यत्र कृषते[1] कर्षतीत्यपि ॥२४२॥
रदत्येवं विलिखति खनत्यपि हलत्यपि ।
'आलोडयति **संगाहे** तथा संगाहतेऽपि च' ॥२४३॥
वपत्यु**प्तौ** प्रकिरति वपते ऽप्यथ **रोपणे** ।
'मूलयत्यपि संरोहयति संरोपयत्यपि' ॥२४४॥
स्थिरतायां ध्रुवत्यत्र मूलति प्रतितिष्ठति ।
शोषे तु शुष्यति तथा शुण्ठत्याश्यायते[2]ऽपि च ॥२४५॥
वापयतीति[3] च' '**सेके** तु सिञ्चत्यार्द्रीकरोति च ।
आत्मनेऽपि द्वयं वर्षत्यार्द्रयत्यपि शीकते ॥२४६॥
उनत्ति क्लेदयति च क्नोपय[4]त्युक्षतीति च ।
आर्द्रीभवत्यार्द्रभावे क्लिद्यति स्तिम्यतीति च ॥२४७॥

---

१. मूल में यहाँ 'कर्षते' पढ़ा था, पर कृष् भ्वा० आत्मनेपदी होती नहीं, अतः हमने शुद्ध कर दिया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि हल चलाने अर्थ में तुदा० कृष् का ही प्रयोग देखा जाता है।

२. आङ् पूर्वक श्यैङ् का प्रयोग द्रवद्रव्य का संघात-रूप में परिणत होना, इस प्रकार के सूखने में होता है। यथा पन्थान आश्यानकर्दमाः। निदाघे शुष्यन्ति तरूणां पत्त्राणि, यहाँ 'आश्यायन्ते' नहीं कह सकते।

३. (ओ) वै शोषणे भ्वा० प० अकर्मक है, अतः सुखाने अर्थ में णिच् किया है। वै—वा पुक् णि शप् ति=वापयति। मूल में 'वाययति' अशुद्ध रूप मुद्रित था।

४. क्नूय् भ्वा० आ० अकर्मक है, अतः गीला करने अर्थ में णिच् का प्रयोग किया है।

वर्धने वर्धयत्यत्र बृंहयत्येधयत्यपि ।
संचये संबिभर्तीति[1] संचिनोत्यात्मने त्रयम् ।।२४८।।
तथैवोपचिनोत्यत्र संभाण्डयत[2] इत्यपि ।
राशीकारे पुञ्जयति कूटयत्यत्र युग्मकम्' ।।२४६।।
उच्चिनोति शिलत्युञ्छे त्रयमुञ्छयतीत्यपि ।
अवहन्तीति **वैतुष्यकरणे** कण्डयत्यपि ।।२५०।।
फलीकरोति वितुषीकरोतीत्यात्मने द्वयम् ।
[3]पुरापुनात्यात्मनेऽपि प्रस्फोटयति[4] तत्समाः ।।२५१।।
मिमीते मायते[5] **माने** तथा मातीत्यकर्मकम् ।
तोलयत्यत्र **हेमादिमाने** तुल[6]यतीत्यपि ।।२५२।।
विक्रीणीते निमयतेऽवक्रीणीते च **विक्रये** ।
सत्याकरोत्यात्मनेऽपि तुल्ये सत्यापयत्यपि ।।२५३।।
क्रीणीते विनिमयते क्रीणातीति **क्रये तिस्रः** ।
स्यान्**नैपुण्ये** निपुणाति[7] निष्णाति च दक्षते चात्र ।।२५४।।
अर्जनेऽर्जत्यर्जयति गणने गणयत्यपि ।
कलयत्यपि संख्याति[8] **गुणने** गुणयत्यपि ।।२५५।।

---

१. संभार=सामग्री । संभृ=इकट्ठा करना ।

२. भाण्डानि समाचिनोति=संभाण्डयते । णिङ् ।

३. यहाँ मूलकारिकाकार को सम्भवतः परापुनाति पाठ अभिमत होगा। पर 'परा' का प्रयोग भी कहीं देखने में नहीं आता । परि पू का प्रयोग मिलता है—तितउः परिपवनं भवति । अव हन् आदि के साथ परा (परि) पू तथा प्रस्फुट् णिच् समानार्थक नहीं हैं । 'तत्समाः' कहना अनुचित है । परि पू का छानना अर्थ है । अव हन् का कूटना ।

४. प्रस्फुट् णिच्=सूप से फटकारना । अतः अमर का पाठ है—प्रस्फोटनं तु शूर्पोऽस्त्री ।

५. माङ् दिवा० आ० है ।

६. तुलां करोतीति विग्रहः । तुला=सादृश्य । तुलयति बराबर होता है । धातु सकर्मक है ।

७. निपुणाति, निष्णाति—यह कहीं भी प्रयुक्त नहीं हैं । केवल क्तान्त रूप देखकर कल्पित कर लिये गये हैं ।

८. न्यासकार के अनुसार सम्पूर्वक ख्या का तिङन्त रूप में प्रयोग नहीं होता । संचष्टे (गिनता है) ऐसा कहना चाहिए ।

आहन्तीति द्वयं **प्रोञ्छे** प्रोञ्छत्युत्सारयत्यपि ।
तद्भेदे लुम्पते लुम्पत्यत्र मार्जति **च त्रयम्** ॥२५६॥
विभागे वण्टयत्यत्र विभजत्यत्र विभजत्यात्मनेऽप्यदः ।
विभाजयत्यंशयति वण्टत्यपि च **पञ्चकम्** ॥२५७॥
तिरस्करोत्यपिदधात्यत्र व्यवदधात्यपि ।
पिदधात्यावृणोतीति संवृणोति स्तृणोति च ॥२५८॥
स्तृणातीत्यात्मनेऽप्य**ष्टौ**[1] तथा संगोपयत्यपि' ।
अपवारयति च्छादयति स्थग[2]यतीत्यपि ॥२५९॥
तिरय[3]**त्यावृतौ**, चाथ **निक्षेपे** निक्षिपत्यपि ।
निक्षिपत्यात्मनेऽपि द्वौ तथोपनिदधाति च ॥२६०॥
न्यस्यति प्रतिदत्ते[4], 'ऽथ निष्क्रयीकुरुते तथा' ॥
स्यात्प्रत्युपकरोत्यत्र निरृणीभवतीति च' ॥२६१॥
प्रत्यर्पयतीति तु **न्यासार्पणे** निर्यातयत्यपि' ।
'अपेक्षतेऽभ्यर्थयते वनुतेऽर्दति नाथति ॥२६२॥
याच्ञायां भिक्षते मार्गयते याचति याचते' ॥
'मार्गत्यन्विच्छति गवेषयत्यन्विष्यतीति च ॥२६३॥
अन्वेषते[5] मार्गयति विचिनोत्यात्मनेऽप्यदः ॥
अन्वेषणे मृगयते[6] मृग्यतीति[7] **नव** क्रियाः ॥२६४॥

---

१. तिरस् कृ आदि आठ धातुएँ उभयपदी हैं। इनका तथा तिरयति पर्यन्त धातुओं का ढाँपना, छुपाना, ढकना, बन्द करना अर्थों में प्रयोग होता है। व्यव धा का ओट में रखना, जुदा करना अर्थ है। पर्वतको ग्रामाद् नदीं व्यवधत्ते ।

२. स्थग् लौकिक धातु है। धातुपाठ में नहीं पढ़ी। स्थगितमम्बुदैरम्बरम्, आकाश बादलों से घिर गया है। द्वारं पिधेहि, दर्वाजा बन्द कर दो।

३. तिरस् णिच् । टि लोप ।

४. प्रतिदत्ते 'न्यास लौटाता है'—यही अर्थ है। इसका यहाँ अस्थाने पाठ है।

५. अनुएषृ (एष्) भ्वा० आ०। मार्ग् से लेकर नौ धातुएँ सभी अन्वेषणार्थक हैं।

६. मृग अन्वेषणे चुरा० अदन्त, आ० ।

७. मृग कण्ड्वादि ।

'**दोहानुकूल्ये** दुग्धे गौः' 'प्रस्नुते च **स्वयं स्रवे** ।
वियोजयति विश्लेषयति चात्र **वियोजने** ॥२६५॥
वियुज्यते विघटते तथा विश्लिष्यतीति च ।
विच्छिद्यते द्वयं कर्मकर्तरि व्यतिरिच्यते ॥२६६॥
'**मिश्रणे** मिश्रयत्यत्र तथा संयोजयत्यपि ।
कषयत्यत्र संमेलयति च्छुरयतीत्यपि ॥२६७॥
संयुनक्ति च **सप्तात्र** क्रियाः संघट्टयत्यपि' ।
'संयुज्यतेऽतिसंयौति संपृणक्त्यात्मनेऽपि च ॥२६८॥
संभिद्यते कर्मकर्तर्यत्र संसृज्य[1]तीत्यदः ।
संबध्नाति[2] मिलत[3]यत्र संगच्छति[4] च **संगतौ**' ॥२६९॥
विना कर्मात्मने चात्र तथा संनिपतत्यपि ।
उपसीद[5]त्युपनमत्यत्र स्यादुपकण्ठते' ॥२७०॥
तद्भेदे समवैतीति सचते चासजत्यपि ।
व्यतिषज्यत इत्येतत्पदं स्यात्कर्मकर्तरि ॥२७१॥
उत्फणत्युच्छलति च तथोद्रिच्यत इत्यपि ।
उत्सिच्यते तथोत्**सेके द्वितयं कर्मकर्तरि** ॥२७२॥
'**उत्क्षेपणे** तून्नयति तथोत्क्षिपति चात्मने ।
उदस्यत्युद्धरति च चत्वार्युत्तम्भयत्यपि ॥२७३॥
आनीतावानयत्येतदाहरत्यपि चात्मने ।
संमार्जयति संमार्ष्टि तथा परिसमूहति ॥२७४॥
आत्मनेऽपि च **संमार्गे**[6] 'उपदेग्ध्युपलिम्पति' ।

---

१. (सम्पूर्वक) सृज् दिवा० आ० अकर्मक । यह परस्मैपदी नहीं । संसृज् तुदा० सकर्मक है ।

२. सम् बन्ध् (सकर्मक), जोड़ना ।

३. मिल् मिलना, संगत होना, अकर्मक ।

४. सम् गम् जब अकर्मक हो तो आत्मनेपदी होती है ।

५. पास जाना, निकट होना । उप सद् नित्य सकर्मक है । उप नम् सकर्मक और अकर्मक दोनों । उपकण्ठ् का तिङन्त प्रयोग नहीं मिलता ।

६. संमार्ग, झाड़ू देकर सफाई करना । अग्नि परिसमूहति, ऐसा प्रयोग होता है । समूहिनी संमार्जनी (झाड़ू) का नाम है ।

आत्मनेऽपि पदद्वन्द्वं गोमयत्युपलेपने' ॥२७५॥
संदीपने ज्वलयति तथा संदीपयत्यपि ।
उद्द्योतयति संधुक्षयति च ज्वालयत्यपि ॥२७६॥
पाके तु रन्धयत्यत्र पचतीत्यात्मनेऽप्युभे ।
अधिश्रयति च श्राति[1] श्रपयत्यपि रध्यति ॥२७७॥
रध्यते पच्यते कर्मकर्तृकेऽत्र च राध्यति[2] ।
भर्जते[3] **पाकभेदे** स्यात्त्रयं भृज्जति भृज्जते ॥२७८॥
द्रवीकृतौ लीनयति लयति द्रावयत्यपि ।
लालयत्यपि वा लाययति लापयतीत्यपि ॥२७९॥
संदधात्यात्मने चाभिषुणोत्य**भिषवे** द्वयम् ।
स्वदते रोचते **रुच्यां संस्कृतौ** संस्करोत्यदः ॥२८०॥

इति वैश्यक्रियावर्गः ॥

आत्मने वयति **व्यूतावूयते**[4]ऽथ विषीव्यति ।
तथा निषीव्यति **स्यूतौ**[5] परिषीव्यति सीव्यति ॥२८१॥
तक्षति श्यति तक्ष्णोति कृश्यति ह्रसयत्यपि ।
तक्षणे[6] त्वक्षति तथा परिवास[7]यतीत्यपि ॥२८२॥
संक्ष्णुते **तीक्ष्णकरणे** क्ष्णौति चोत्तेजयत्यपि ।

---

१. श्रा पाके अदादि अकर्मक है। इसका पकना अर्थ है, पकाना नहीं। अधि श्रि भ्वा० उ० का अर्थ चुल्हे पर चढ़ाना है—स्थालीमधिश्रयति। चूल्हे से उतारने को अधः श्रयति कहते हैं। सीधा पकाना अर्थ नहीं, पकाने के लिए चढ़ाना अर्थ है।

२. राध् जब अकर्मक हो तभी इससे श्यन् आता है। यहाँ पकाना अर्थ विवक्षित है, अतः श्यन् नहीं आ सकता।

३. भर्जते=भूनता है। भ्रजि भृजी भर्जने भ्वा० आ०।

४. ऊयी (ऊय्) तन्तुसन्ताने (बुनना)। भ्वा० आ०।

५. स्यूति=सीना। विषीव्यति आदि में वि, परि, नि उपसर्गों के योग से धातु सिव् के 'स्' को 'ष्' हुआ।

६. तक्षण=तराशना, छीलना।

७. परिपूर्वक वास् चुरा०।

निशिनोति निशीशांस[१]त्यात्मनेऽपि पदद्वयम् ॥२८३॥
छेदने कृन्तति च्छिन्त्ते च्छिनत्ति च्छेदयत्यपि ।
छ्यति वर्धयती[२]त्यत्र वृश्चतीत्यथ **तद्भिदि** ॥२८४॥
प्रायो लुनीते **धान्यादेश्छेदे** दाति लुनाति च ।
त्रुटति त्रुटयति **च्छेदे** च्छिद्यते कर्मकर्तृके ॥२८५॥
भिन्ते विदारयति च भिनत्ति च **विदारणे** ।
आखण्डयत्यपि स्फोटयति भेदयति द्यति ॥२८६॥
परीक्षते निकषते[३] **शुद्धत्वादिविनिर्णये** ।
प्लोषति प्लुष्यति दहत्योषति ज्वलयत्यपि ॥२८७॥
मुष्णाति चोरयत्यत्र लुण्ठयत्यपि **मोषणे** ।
आत्मने चापि हरति म्लोच[४]त्यत्र च लुण्टति ॥२८८॥
उल्लुण्ठत्याच्छिनत्तीति द्वयमेतद् **बलाद्धृतौ** ।
प्रसहत्या[५]त्मनेऽप्यत्र हठतीति **बलात्कृतौ** ॥२८९॥
निष्कुष्णाति तु **निष्कर्षे** तथा निष्कर्षतीत्यपि ।
संदानयति[६] बध्नाति तथा संद्यति कीलति ॥२९०॥
नह्यतीत्यात्मने **त्रीणि** संयच्छति सिनोति च ।
पाशयत्यपि **बन्धे** च......॥२९१॥
'**स्तम्भे** स्तम्भते स्कम्भते तथा' ।
'अथ **स्तब्धीकृतौ** स्तुम्भयति स्कम्भयतीत्यपि' ॥२९२॥
प्रतिबध्नाति च तथा **विघ्ने** प्रत्यर्थयत्यदः ।

---

१. निपूर्वक शान तेजने से स्वार्थ में सन् । अनुदात्तेत् । अतः 'निशीशांसते' यही साधु है ।

२. वर्ध चुरादि० । इसी से वर्धकि (बढ़ई) शब्द व्युत्पन्न होता है ।

३. कष् भ्वा० प० । 'निकषते' असाधु है । स्वर्णं कषति (निकषति) स्वर्णकारः ।

४. म्लुच् गत्यर्थक है । यद्यपि 'मलिम्लुच' शब्द में स्तेय अर्थ स्पष्ट है । ग्रुच्, ग्लुच् तो स्तेयार्थक पढ़ी हैं ।

५. प्रसह् अभिभव अर्थ में रूढ है और सकर्मक है । हठ् बलात्कार अर्थ में अकर्मक है । तिङन्त रूप में प्रयोग दुर्लभ है ।

६. सम्-पूर्वक दान अवखण्डने तथा सम्-पूर्वक दो अवखण्डने का अर्थ 'बांधना' हो जाता है ।

तथा विहन्त्यन्तरेति[1] प्रत्यूहत्यात्मनेऽपि च ॥२९३॥
विघ्नयत्यन्तरयति' प्रत्यवैति[2] च दुष्यति ।
दुष्करोत्यघयत्यत्र[3] दुष्कृते पङ्कयत्यपि ॥२९४॥
संततौ संतनोतीति तथा संतनुतेऽपि च ।
अत्र संतायते संतानयतीति **चतुष्टयम्** ॥२९५॥

इति शूद्रक्रियावर्गः ॥

'प्रभाति व्युच्छति **व्युष्टे** प्रत्यूषति[4] विभाति च ।
'सूर्येन्दुग्रहणे तूपप्लवते चोपरज्यति' ॥२९६॥
उपसंहरतीति स्यात्तथा निगमयत्यपि । (उपसंहारे)

इति प्रकीर्णवर्गः ॥

---

१. अन्तर् इण् का अर्थ वैदिक साहित्य में छोड़ना प्रसिद्ध है । तमन्तर् इत्य = तं मुक्त्वा, तं वर्जयित्वा । यहाँ इण् अन्तर्लीनण्यर्थक है ।

२. प्रति अव इण् का अर्थ शास्त्रातिक्रम के कारण दोष का भागी होना है । यह अकर्मक है ।

३. अघं पापं करोतीत्यघयति ।

४. ऊष रुजायाम् भ्वा० प० । प्रतिपूर्वक ऊष् का 'पौ फटना' अर्थ अत्यन्त अप्रसिद्ध है । प्रत्यूष (पुं०) प्रभात काल को कहता है ।

इति समानार्थकधातुविषयकस्तृतीयोऽनुबन्धः ।

समाप्तश्चायङ्ग्रन्थः ।

इति श्रीचारुदेवशास्त्रिणः कृतिषु व्याकरणचन्द्रोदये तिङन्त-निरूपणस्तृतीयः खण्डः पूर्तिमगात् ।

शुभं भूयादध्यायकानामध्यापकानां च ।

एतद्ग्रन्थोपात्तसूत्रवार्तिकादीनां सूची

सूत्रम्	पृष्ठम्	सूत्रम्	पृष्ठम्
अकर्मकाच्च	४५५, ४५८	अतो लृान्तस्य	२४५
अक्नुत्सार्वधातुक०	३४१	अतो हलादेर्लघोः	२४५
अक्षोऽन्यतरस्याम्	६५	अतो हेः	६
अचः कर्मकर्तरि	४९८	अत्यन्तापह्नवे०	५०२
अचः परस्मिन्०	५८	अत्र लोपोऽभ्यासस्य	३७९
अचस्तास्वत्थल्य०	२९७	अत्स्मृदृत्वरप्रथ०	२७०
अचि विभाषा	१५३	अदः सर्वेषाम्	७२
अचिश्नुधातुभ्रुवां०	६४	अदभ्यस्तात्	१०५
अचो ञ्णिति	१८०	अदिप्रभृतिभ्यः शपः	७२
अचोऽन्त्यादि टि	६	अधिकरणाच्चेति (वा०)	४२९
अजादेर्द्वितीयस्य	१०९	अधेः प्रसहने	४५८
अजेर्व्यघञपोः	३२८	अनद्यतने लङ्	८
अञ्जेः सिचि	२४८	अनद्यतने लुट्	२०४
अज्झनगमां सनि	३७०	अनवक्लृप्त्यमर्षयो०	५१२
अडभ्यासव्यवायेऽपि	१५३	अनाचमिकमिवमी० (वा०)	२८८
अङ् गार्ग्यगालवयोः	१०४	अनितेः	१०४
अणावकर्मकाच्०	४७२	अनिदितां हलः	१३५
अत आदेः	३०२	अनुदात्तङितः	४, ४४८
अत उत्सार्व०	१००	अनुदात्तोपदेशवनति०	७३
अत उपधायाः	१८०, ३४८	अनुदात्तस्य चर्दुप०	२१२
अत एकहल्मध्ये०	३२१	अनुनासिकस्य क्वि०	४१३
अतो गुणे	१	अनुपराभ्यां कृञः	४७०
अतो दीर्घो यञि	१	अनुपसर्गाज्ज्ञः	४६८
अतो येयः	८	अनुपसर्गाद्वा	४६१
अतो लोपः	५८	अनुविपर्यभिनिभ्यः	६६

अनोरकर्मकात्	४६२
अन्तः शब्दस्याङ्० (वा०)	११
अपरोक्षे च	५०४
अपह्नवे ज्ञः	४६१
अपाच्चतुष्पाच्छकुनि०	४५२
अपाद्वदः	४६८
अपृक्त एकाल् प्रत्ययः	७२
अभिज्ञावचने लृट्	५०२
अभि-प्रत्यतिभ्यः ०	४७०
अभिवादिदृशोरा० (वा०)	३६३
अभ्यस्तस्य च	३१५
अभ्यासस्यासवर्णे	३२०
अभ्यासाच्च	३१०
अभ्यासे चर्च	१०६
अयङ् यि क्ङिति	४८८
अयमन्ताल्वाय्ये०	३३३
अर्तिपिपर्त्योश्च	११२
अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च (वा०)	२३३
अर्तिह्रीव्लीरीक्नूयी०	१८४
अर्थवेदयोरप्यापुग् (वा०)	४३६
अर्हे कृत्यतृचश्च	५१८
अवाच्चावलम्बना०	१७६
अवाद् ग्रः	४६३
अशनायोदन्यधना०	४२७
अश्नोतेश्च	३३१
अश्वक्षीरवृषलवणा०	४२८
असंयोगाल्लिट्०	२६५
असिद्धवदत्राभात्	७४
अस्तिसिचोऽपृक्ते	१०१
अस्तेर्भूः	२१२
अस्मद्युत्तमः	३
अस्यतिवक्तिख्या०	२३०
अस्यतेस्थुक्	२३०
आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे (ग०)	४३८
आगमेः क्षमायाम् (वा०)	४५१
आङ उद्गमने	४६०
आङः स्थः प्रतिज्ञाने	४५३
आङ्लोपश्च कालात्य० (ग०)	४३८
आङि नुप्रच्छ्योः (वा०)	४५२
आङो दोऽनास्य०	४५०
आङो यमहनः	२४३, ४५५
आ च हौ	११५
आटश्च	६, १०
आडजादीनाम्	१०
आडुत्तमस्य पिच्च	७
आतः	२५६
आत औ णलः	३०७
आतो ङितः	६
आतो युक्चिण्कृतोः	२८५, ४८८
आतो लोप इटि च	२३०
आत्मनेपदेष्वन्य०	२३३
आदिखाद्योर्न (वा०)	३६१
आदिर्ञिटुडवः	३०
आदेच उपदेशे०	२१०
आदेशप्रत्यययोः	८१
आधृषाद्वा	१६०
आनि लोट्	११
आप्ज्ञप्यृधाम्०	३७६
आमः	३३२
आमेतः	७
आम्प्रत्ययवत्०	३३२
आर्धधातुकं शेषः	४

आर्धधातुकस्येड्०	१६७	ईड-जनोर्ध्वे च	८३
आयादय आर्ध०	२१३	ईशः से	८३
आशंसायां भूतवच्च	५०७	ई हल्यघोः	११४
आशंसावचने लिङ्	५०८		
आशिषि नाथः	४५१	उतश्च प्रत्ययाद०	१७
आशिषि लिङ् लोटौ	५१६	उताप्योः समर्थयो०	५१४
आहस्थः	६२	उतो वृद्धिर्लुकि०	८८
		उत्परस्यातः	३६४
इको गुणवृद्धी	४	उदश्चरः सकर्मकात्	४६३
इको झल्	३६६	उदोऽनूर्ध्वकर्मणि	४५३
इग्यणः सम्प्रसारणम्	१३०	उदोष्ठ्यपूर्वस्य	११२
इङश्च	३८२	उद्विभ्यां तपः	४५५
इच्छार्थेभ्यो विभाषा०	५१६	उपदेशेऽत्वतः	२६७
इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ	५१६	उपधायां च	५३
इजादेश्च गुरुमतो०	३३३	उपधायाश्च	१८५
इट ईटि	२४५	उपपराभ्याम्	४६०
इट् सनि वा	३८०	उपमानादाचारे	४२६
इटोऽत्	८	उपसर्गप्रादुर्भ्याम्०	१०२
इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम्	३०२	उपसर्गस्यायतौ	४८
इणः षीध्वं-लुङ्०	२३५	उपसर्गात्सुनोतिसुवति०	२७
इणो गा लुङि	२५६	उपसर्गादसमासे०	१५
इणो यण्	६४	उपसर्गादस्यत्यू० (वा०)	४५६
इण्वद् इकः	६४	उपसर्गाद् ध्रस्वः०	३४२
इतरेतरान्योन्योप०	४४६	उपाच्च	४७१
इतश्च	७	उपात्प्रतियत्न०	१७०
इदितो नुम् धातोः	५५	उपाद् देवपूजासंगति० (वा०)	४५४
इद् दरिद्रस्य	१०६	उपाद्यमः स्वकरणे	४६४
इरितो वा	२२६	उपान्मन्त्रकरणे	४५४
इष-गमियमां छः	४१	उभे अभ्यस्तम्	१०६
ई घ्रा-ध्मोः	३६४	उभौ साभ्यासस्य	३७३
ई च गणः	२६६	उर्ऋत्	२७६

उश्च २३७
उषविदजागृभ्यो० ३३३
उस्यपदान्तात् १८
ऊदुपधाया गोहः ६६

ऊर्णोतेर्विभाषा ९३
ऋच्छत्यृताम् ३०२
ऋतश्च ४१०
ऋतश्च संयोगादेः २३७
ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ३०४
ऋतो भारद्वाजस्य २९६
ऋदृशोऽङि गुणः २३०
ऋद्धनोः स्ये २०७
ऋत इद्धातोः १२४

एकाच उपदेशे० १९८
एकाचो द्वे प्रथमस्य १०९
एत ऐ ७
एतेर्लिङि ३४१
एरनेकाचोऽसंयोग० ११०
एरुः ६
एर्लिङि ३४१

ओः पुयण्ज्यपरे २८०
ओजसोऽप्सरसो नित्यम्० ४३०
ओतः श्यनि १२५

कण्ड्वादिभ्यो यक् ४४६
कमेर्णिङ् ४८
कमेश्च्लेश्चङ् (वा०) २६५
कम्पने चलिः (ग० सू०) ३५६
कर्तरि कर्मव्यतिहारे ४४८
कर्तरि शप् ६
कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ४३०
कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ४५९
कर्मणो रोमन्थ० ४३२
कर्मवत् कर्मणा० ४६४
कष्टाय क्रमणे ४३३
काण्यादीनां वा (वा०) २८४
कामप्रवेदनेऽकच्चिति ५१४
काम्यच्च ४२७
कालविभागे चानहो० ५०९
कास्प्रत्ययदाम० ३३२
कास्यनेकाज्ग्रहणं० (वा०) ३३३
किङ्किलास्त्यर्थेषु लृट् ५१२
किंवृत्ते लिङ्लृटौ ५१२
किंवृत्ते लिप्सायाम् ५०६
किदाशिषि ३४०
किरतेर्हर्षजीविका० (वा०) ४५१
किरतौ लवने १५३
किरश्च पञ्चभ्यः ३७९
कुषिरञ्जोः प्राचां० ५००
कुहोश्चुः १०९
कृञ्चानुप्रयुज्यते० ३३२
कृपो रो लः ३२
कृसृभृवृस्तुद्रुस्रु० २९६
क्ङिति च ५
क्ङित्यजादौ० (इ०) १०२
क्यचि च ४२५
क्यच्व्योश्च ४२७
क्यस्य विभाषा ४२८
क्रमः परस्मैपदेषु ४१
क्रियासमभिहारे लोट्० ५२०

क्रीड्जीनां णौ २७३
क्रीडोनुसंपरिभ्यश्च ४५१
क्र्यादिभ्यः श्ना १७०
क्सस्याचि २६०

क्षिप्रवचने लृट् ५०८
क्षुभ्नादिषु च १७६

खरि च ७३

गन्धनावक्षेपणसेवन० ४५७
गमहनजनखनघसां० ७३, ३०९
गमेरिट् परस्मै० २०७
गर्हायां च ५१३
गर्हायां लडपिजात्वोः ५११
गाङ्कुटादिभ्यो० १५०
गाङ् लिटि ३२०
गातिस्थाघुपाभूभ्यः० २५९
गुणोऽपृक्ते ९३
गुणो यङ्लुकोः ३९३
गुणोऽर्तिसंयोगा० ३४२
गुपूधूपविच्छि० ४८
गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने ४६७
ग्रहि-ज्या-वयि-व्यधि० १३०
ग्रहोऽलिटि० २११
ग्ला-स्ना-वनु-वमां च(ग०) ३५८

घटादयो मितः ३५४
घुमास्थागापा० २०९
घ्वसोरेद्धावभ्यास० १०१

चक्षिङः ख्याञ् २१२
चङि २६४
चरफलोश्च ३९४
चायः की ३९५
चिणो लुक् २३७, ४८३
चिण्णमुलोर्दीर्घो० ४८५
चिण् ते पदः २३७
चिण्भावकर्मणोः २८५, ४८३
चित्रीकरणे च ५१३
चित्रीकरणे प्रापि (ग०) ४३८
चिस्फुरोर्णौ १८४
चीवरादर्जने० (वा०) ४३८
०चुरादिभ्यो णिच् १७९
च्छ्वोः शूडनु० १७७
च्लि लुङि २२९
च्लेः सिच् २३४

छे च २३२

जक्षित्यादयः षट् १०५
जनसनखनां सञ्झलोः २३८
जनी-जृष्-क्नसु० (ग०) ३५८
जनिवध्योश्च ३४९
जल्पतिप्रभृती० (वा०) ३६१
जहातेश्च ११५
जाग्रोऽविचिण्० २४४
जातुयदोर्लिङ् ५१३
जिघ्रते र्वा २७९
जिह्वोन्मथने लडिः (ग०) ३५७
जुसि च १०५
जुहोत्यादिभ्यः श्लुः १०९
जृस्तम्भुम्रुचुम्लुचु० २३३

ज्ञप मिच्च (ग०) ३५४
ज्ञाजनोर्जा १२५
ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ४६४
ज्वरत्वरस्त्रिव्य० ४२१
ज्वलह्वलह्मल० (ग०) ३५५
ज्योतिरुद्गमने (वा०) ४६०
झरो झरि सवर्णे २३६
झलो झलि २४३
झषस्तथोर्धोऽधः १५७
झस्य रन् ८
झेर्जुस् ८
झोऽन्तः ५
टित आत्मनेपदा० ६
णलुत्तमो वा २६५
णिचश्च १८०
णिश्रिद्रुस्रुभ्यः २६३
णेरणौ यत्कर्म स चेत्० ४६७
णेरनिटि २६४
णो नः १५
णौ गमिरबोधने ३५३
णौ चङ्युपधायाः० २६४
णौ च संश्चङोः २७३, २७५
ण्यल्लोपावियङ्यण्० (वा०) २५४
तङानावात्मनेपदम् २
तत्करोति तदाचष्टे (ग०) ४३५
तत्प्रयोजको हेतुश्च ३४८
तनादिकृञ्भ्य उः १००
तनादिभ्यस्तथासोः २३८
तनिपतिदरिद्राति० (वा०) ३७८
तनूकरणे तक्षः ६४
तनोतेर्यकि ४८८
तनोतेर्विभाषा ६०३
तपस्तपः-कर्मकस्यैव ३७९
तपोऽनुतापे च ४९९
तस्थस्थमिपां० ४९०
तस्मान्नुड् द्विहलः ७
तान्येकवचनद्विवचन० ३३०
तासस्त्योर्लोपः २
तिङ् शित्सार्वधातुकम् १०१
तिङस्त्रीणि त्रीणि ४
तिप्यनस्तेः २
तिष्ठतेरित् १०६
तीषसहलुभरुष० २७८
तुदादिभ्यः शः २११
तु-रु-स्तु-शम्यमः० १४३
तुह्योस्तातङ्० ८९
तृणह इम् ६
तॄफलभजत्रपश्च १६३
थलि च सेटि ३२४
थासः से ३२१
दंशसञ्जस्वञ्जां० ६
दधस्तथोश्च ४३
दम्भ इच्च ११७
दयतेर्दिगि लिटि ३८२
दयायासश्च ३२७
दरिद्रातेरार्धधातुके० (वा०) ३३३
दश्च २१३
दाणश्च सा चेच्० ९९
दिवादिभ्यः श्यन् ४६४
दीङो युडचि १२२
दीधीवेवीटाम् ३२८
दीपजनबुधपूरि० २०५
२३८

दीर्घं इणः किति ३१८
दीर्घोऽकितः ३६३
दीर्घो लघोः २६५
दुहश्च ४६८
दुहिपच्योर्बहुलं० (वा०) ४६७
दृशेश्च (वा०) ३६२
दोषो णौ ३५३
द्युतिस्वाप्योः० ३८७
द्युद्भ्यो लुङि २३४
दिर्वचनेऽचि ३००
द्विषश्च ७६
द्व्येकयोर्द्विवचनैक० २
धातोः कर्मणः समान० ३६५
धातोरेकाचो० ३६२
धात्वादेः षः सः १३
धि च ८४
धिन्विकृण्व्योर च ५७
नः क्ये ४२६
न कम्यमिचमाम् (ग०) ३५६
न कवतेर्यङि ३६५
नक्षत्रयोगे ज्ञि (ग०) ४३६
न गतिहिंसार्थेभ्यः ४४८
न दुहस्नुनमां यक्० ४६७
ननौ पृष्टप्रतिवचने ५०४
न न्द्राः संयोगादयः २६४
नन्वोर्विभाषा ५०४
न पादम्याङ्यमाङ्० ४७२
न भकुर्छुराम् १६८
न माङ्योगे २२६
नमोवरिवश्चित्रङः० ४२६
न यदि ५०२
न रुधः ४६६
न लिङि ३४२
न लुमताङ्गस्य ४०६
न-लोपः प्रातिपदिकान्तस्य० ४२६
न वशः ३६५
न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः २१२
न व्यो लिटि ३१७
न शसददवादि० ३२६
नश्चापदान्तस्य झलि ४१३
न सम्प्रसारणे सम्प्र० ३१६
नहो धः ४०७
नानद्यतनवत् क्रिया० ५०८
नानोर्ज्ञः ४६४
नान्ये मितोऽहेतौ (ग०) १८४, ३५४
नाभ्यस्तस्याचि पिति० ११८
निगरणचलनार्थेभ्यश्च ४७२
निजां त्रयाणां गुणः० ११८
नित्यं करोतेः १६८
नित्यं ङितः ६
नित्यं स्मयतेः ३५१
नियन्तृकर्तृकस्या० (वा०) ३६१
निरः कुषः २१०
निसमुपविभ्यो ह्वः ४५७
निसस्तपतावनासेवने ४२
नीग्-वञ्चु-स्रंसु० ३६४
नीवह्योर्न ३६१
नुगतोऽनुनासिका० ३६३
नेटि २४४
नेड्व्यलिटि रधेः २१३
नेड्वशि कृति १६८
नेर्गदनदपतपद० ४१

नेर्विशः ४४९
नोदात्तोपदेशस्य० २८८
पतः पुम् २३०
परस्मिन् विभाषा ५०९
परस्मैपदानां णल० २९५
पराङ्कर्मकान्न निषेधः (वा०)४५०
परिनिविभ्यः सेवसित० १६९
परिव्यवेभ्यः क्रियः ४४९
परेर्मृषः ४७१
परेश्च ६९
परोक्षे च लोकविज्ञाते (वा०) ५०१
पाघ्राध्मास्थाम्ना० २०
पादिषु धेट उप० (वा०) ४७२
पुगन्तलघूपधस्य च ५
पुच्छभाण्डचीव० ४३३
पुच्छादुदसने० (वा०) ४३४
पुरि लुङ् चास्मे ५०५
पुषादिद्युताद्य्० २२९
पूर्वत्रासिद्धम् १५६
पूर्ववत्सनः ३६७
पूर्वोऽभ्यासः १०९

प्रकाशनस्थेया० ४५३
प्रजने वीयतेः ३५२
प्रतिषेधे हसादीनाम् (वा०) ४४८
प्रत्ययलोपे प्रत्यय० ४०९
प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १०९
प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ४६५
प्रलम्भनाभिभव० (वा०) ३५१
प्रश्ने चासन्नकाले ५०४
प्रहासे च मन्योपपदे ३
प्राक् सितादड्व्य० २८
प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे (ग०)२८२,४३६
प्रात्तुम्पतौ गवि० (ग०) ५५
प्राद्वहः ४७१
प्रैषातिसर्गप्राप्त० ५१७
प्रोपाभ्यां युजे० ४६६
प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ४६०
प्वादीनां ह्रस्वः १७२
फणां च सप्तानाम् ३२३
फेनाच्चेति० (वा०) ४३२
बहुषु बहुवचनम् १२
बाष्पोष्मभ्याम्० ४३२
बिभेतेर्हेतुभये ३५०
बुधयुधनशजने० ४७१
ब्रुवः पञ्चानाम्० ६१
ब्रुव ईट् ६२
ब्रुवो वचिः २१२
भक्षेरहिंसार्थस्य (वा०) ३६१
भञ्जेश्चिणि २६०
भवतेरः २९९
भविष्यति मर्यादा० ५०९
भाण्डात्समाचयने (वा०) ४३४
भावकर्मणोः ४४८
भासनोपसंभाषा० ४६२
भियोऽन्यतरस्याम् ११०
भियो हेतुभये० ३५१
भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३३३
भुजोऽनवने ४६६
भुवो वुग्लुङ्० २५९
भूते च ५१०

भूवादयो धातवः १
भूषाकर्मकिरादि० (वा०) ४६८
भूसुवोस्तिङि ४५,२५६
भृञामित् ११३
भृशादिभ्यो भुव्य० ४३१
भ्रस्जो रोपधयोः २१२
भ्राजभासभाष० २८३

मस्जिनशोर्झलि २१६
मस्जेरन्त्यात्० (वा०) २१६
माङि लुङ् ५१६
मान्तप्रकृतिक० (वा०) ४२७
मारणतोषण० (ग०) ३५६
मितां ह्रस्वः १८४,३५४
मिथ्योपपदात्० ४६७
मिदचोऽन्त्यात्० १४४
मिदेर्गुणः १३७
मीनातिमिनोति० २१०
मुण्डमिश्रश्लक्ष्ण० ४३४
मृजेर्वृद्धिः १०२
मेर्निः ६
मो नो धातोः ४११
म्रियतेर्लुङ् लिङोश्च १४७
म्वोश्च ४१२

यक्चिणोः प्रति० (वा०) ४६६
यङि च ३६४
यङोऽचि च ४०३
यङो वा ४०४
यच्च-यत्रयोः ४१३
यमरमनमातां० २५७
यमो गन्धने २३८
यमोऽपरिवेषणे (ग०) ३५६
यसोऽनुपसर्गात् १३५
यस्मात् प्रत्यय० ४
यावत्पुरानिपात० ५०५
यासुट् परस्मै० ८
युष्मद्युपपदे० ३
ये च १६८
ये विभाषा ३४२

रञ्जेर्णौ मृग० (वा०) ३५८
रञ्जेश्च ४३
रधादिभ्यश्च २१०
रधिजभोरचि २१३
रभेरशब्लिटोः २७२
रलो व्युपधाद् ३७५
राधो हिंसायाम् ३२२
राधो हिंसायां सनीस् (वा०) ३७६
राल्लोपः ४२२
रिङ्शयग्० १४७
रीगृत्वतः (वा०) ३६४
रीगृदुपधस्य च ३६४
रीङ् ऋतः ३६४
रुदविदमुष० ३७४
रुदश्च पञ्चभ्यः १०३
रुदादिभ्यः सार्व० १०३
रुधादिभ्यः श्नम् १५५
रुहः पोऽन्यतर० ३५३

लः परस्मैपदम् २
लङः शाकटायन० ६६
लट् स्मे ५०४
लभेश्च २७२

लस्य ९
लिङः सलोपो० ८
लिङः सीयुट् ९
लिङाशिषि ३४०
लिङ् च ५१६
लिङ् चोर्ध्वं० ५०७,५१७
लिङ्निमित्ते लृङ्० २०४,५१०
लिङ् यदि ५१८
लिङ्सिचावा० २३५,३४२
लिटस्तझयो० २९९
लिटि धातोरन० २९८
लिटि वयो यः ३१७
लिट् च २९५
लिट्यन्यतर० ३१०
लिट्यभ्यासस्यो० ३१२
लिड्यङोश्च ३२८
लिपिसिचिह्वश्च २३०
लिप्स्यमानसिद्धौ० ५०६
लीलोर्नुग्लुका० ३५१
लुग्वा दुहदिह० २६०
लुङ् २२९
लुङि च २५४
लुङ्लङ्लृङ्० १०
लुङ्सनोर्घस्लृ २३०
लुटः प्रथमस्य २०४
लुटि च क्लृपः २१२
लोटो लङ्वत् ६
लोडर्थलक्षणे च ५०६
लोपः पिबते० २७८
लोपश्चान्यतर० १७
लोपो यि ११५
लोपो व्योर्वलि ६
लोहितडाज्भ्यः० (वा०) ४३१

वलादावार्धं० (वा०) ३२८
वच उम् २३०
वचिस्वपियजा० ३१२
वदव्रजहलन्तस्याचः २४४
वमोर्वा ७५
वर्तमानसामीप्ये० ५०७
वर्तमाने लट् ५
वश्चान्यतर० ३१७
वसतेर्लुङ् रात्रि० (वा०) ५०१
वस्त्रात्समाच्छादने (वा०) ४३५
वा क्यषः ४३१
वा गमः २३८
वा चित्तविरागे ३५३
वाच्य ऊर्णोणुं० (वा०) ३९६
वा जृभ्रमुत्रसाम् ३२२
वान्तो यि प्रत्यये ४२६
वान्यस्य संयोगादेः ३४२
वा भ्राशभ्लाश० ४१
वा लिटि ३२९
वा लिप्सायाम्० (वा०) ४५५
विज इट् २११
विदाङ्कुर्वन्त्वि० १००
विदिप्रच्छि० (वा०) ४५६
विदो लटो वा ९९
विधिनिमन्त्रणा० ५१६
विपराभ्यां जेः ४५०
विप्रतिषेधे परं० ३०६
विभक्तिश्च ९

विभाषा कथमि०	५११	व्यक्तवाचां०	४६२
विभाषा कदा०	५०६	व्यथो लिटि	३१८
विभाषाऽकर्मकाच्च	१७१	व्याङ्परिभ्यो०	४७१
विभाषा घ्राधेट्०	२६०	व्रताद्भोजने० (वा०)	४३४
विभाषा चिण्णमुलोः	१८९	व्रश्चभ्रस्जसृज०	२४७
विभाषा धातौ०	५१५	शकि लिङ् च	५१८
विभाषा धेट्०	२६३	शदेरगतौ तः	३५२
विभाषा लीयतेः	२१०	शप उपालम्भे (वा०)	४५२
विभाषा लुङ्०	२०९	शब्दवैरकलहा०	४३२
विभाषा विप्रलापे	४७२	शब्दायतेर्न (वा०)	३६२
विभाषा वेष्टि०	२७१	शमामष्टानां दीर्घः	१३३
विभाषा श्वेः	३१८, ३९४	शमो दर्शने (ग०)	३५९
विभाषा साकाङ्क्षे	५०२	शर्पूर्वाः खयः	२६४
विभाषा सृजिदृशोः	३०८	शल इगुपधाद०	२६०
विभाषेटः	२३७	शाच्छासाह्वा०	२७४
विभाषोपपदेन०	४६९	शास इदङ्हलोः	१०७
विभाषोपयमने	२३८	शासिवसिघसीनां०	१०७
विभाषोर्णोः	२११	शा हौ	१०७
वुग्युटावुवङ्० (वा०)	२९९	शिक्षेर्जिज्ञासायाम् (वा०)	३७९
वृत्तिसर्गतायनेषु०	४५९	शीङः सार्व०	८६
वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः	२१२	शीङो रुट्	८६
वृद्भ्यः स्यसनोः	२१२	शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा	३२६
वृतो वा	२११	शे तृम्फादीनां (वा०)	१४८
वेः पादविहरणे	४६०	शे मुचादीनाम्	१४४
वेः शब्दकर्मणः	४५८	शेषात्कर्तरि०	४
वेः स्कभ्नाते०	१७९	शेषे प्रथमः	३
वेञः	३१६	शेषे विभाषा०	४१
वेञो वयिः	३१६	शेषे लृडयदौ	५१३
वेत्तेर्विभाषा	४५६	श्नसोरल्लोपः	१०१
वेश्च स्वनो भोजने	४३	श्नान्नलोपः	१६१
वो विधूनने०	३५२	श्नाभ्यस्तयोरातः	१००

श्रन्थिग्रन्थि० (वा०)	३२५	समुदाङ्भ्यो०	४६८
श्लिष आलिङ्गने	२६१	सम्प्रतिभ्याम्०	४६१
श्लौ	१०६	समोऽकूजने (वा०)	४५१
श्वयतेरः	२३३	समो गम्यृच्छिभ्याम्	२०७
श्वयतेर्लिड्यभ्यास०(वा०)	३१८, ३६८	सम्परिभ्यां०	१६६
षढोः कः सि	८१	सम्भावनेऽलमिति०	५१४
ष्ठिवुक्लमुचमां०	२६	सम्माननोत्सञ्जना०	४५६
संयसश्च	१३५	सर्तिशास्त्यर्ति०	२३०
संयोगान्तस्य लोपः	७	सर्वप्रातिपदि० (वा०)	४४१
सः स्यार्धधातुके	२१३	सवाभ्यां वामौ	७
सः स्विदिस्वदि०	३८६	सहिवहोरोद०	२२६
सकर्मकाणां० (वा०)	४६७	सात्पदाद्योः	१४
सत्यापपाश०	४३५	सार्वधातुकमपित्	५
सत्रकष्टकक्ष० (वा०)	४३३	सार्वधातुकार्ध०	४
सनाद्यन्ता धातवः	१८०	सार्वधातुके यक्	४८३
सनि ग्रहगुहोश्च	३६६	सिचि च परस्मै०	२४५
सनि च	३८२	सिचि वृद्धिः०	२४४
सनि ण्वुलि० (वा०)	३७८	सिचो यङि	३६५
सनि मीमाघु०	३७८	सिजभ्यस्तविदि०	६६
सन्यङोः	३६५	सिध्यतेरपार०	३५३
सन्यतः	३६६	सिपि धातो०	१०६
सन्लिटोर्जेः	३०५	सिवादीनां वा०	१६६
सन्वल्लघुनि०	२६५	सुखादिभ्यः कर्तृ०	४३३
समः क्ष्णुवः	४६६	सुट् कात्पूर्वः	१५३
समः प्रतिज्ञाने	४६३	सुट् तिथोः	८
समः सुटि	१७०	सुदिनदुर्दिन० (वा०)	४३३
समवप्रविभ्यः स्थः	४५२	सुप आत्मनः	४२५
समवाये च	१६६	सुपो धातु०	४२५
समस्तृतीया०	४६३	सुब्धातुष्ठिवु० (वा०)	१२३
समुच्चयेऽन्य०	५२१	सुवतिश्रृणोति०	२६६
समुच्चये सामान्य०	५२१	सुविनिर्दुर्भ्यः०	३१४

सूचिसूत्रिमूत्रि० (वा०) ३६२
सृजिदृशोर्० २१२
सृजियुज्योः० (वा०) ४६८
सृजेः श्रद्धोपपन्ने० वा० ४६८
सेधतेर्गतौ २७
सेह्यं पिच्च ६
सेऽसिचि कृत० २११
स्कोः संयोगाद्यो० ८१, २१६
स्खदिरवपरिभ्यां च ३५६
स्तम्भु-स्तुम्भु० १७६
स्तम्भुसिवु० २८४
स्तन्भेः १७६
स्तुसुधूञ्भ्यः० २४७
स्तौतिण्योरेव० ३७१
स्थाघ्वोरिच्च २३७
स्पर्धायामाङः ४५७
स्पृशमृशकृष० (वा०) २४५
स्फायो वः २७२, ३५२
स्फुरतिस्फुलत्यो० १५१
स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ३७१
स्मोत्तरे लङ् च ५२०
स्यतासी लृलुटोः २०४
स्यसिच् सीयुट्० २८६
स्वपिस्यमि० ३६४
स्वरतिसूति० २१०
स्वराद्यन्तोप० (वा०) ४६६
स्वरितञितः कर्तृ० ४
स्वाङ्गकर्मकाच्चेति० (वा०)४५५
स्वादिभ्यः श्नुः १३८
स्वापेश्चङि २७२
ह एति २०४
हनस्तोऽचिण्णलोः २७२, ३५३
हन्तेर्जः ७३
हन्तेर्हिसायां यङि० (वा०) ३६५
हरतेरप्रतिषेधः (वा०) ४४६
हरतेर्गतताच्छील्ये (वा०) ४५१
हलः १७४
हलः श्नः शानज् १७५
हलन्ताच्च ३६७
हलादिः शेषः १७२
हलि च ११२
हल्ङ्याब्भ्यो० ७४
हल्यादिभ्यो० (वा०) ४३५
हशश्वतोर्लङ् च ५०३
हिंसायां प्रतेश्च १५३
हिनुमीना १४०
हुझल्भ्यो हेर्धिः ७२
हुश्नुवोः सार्व० १७
हृक्रोरन्यतर० ३६२
हेतुमति च ३४८
हेतुहेतुमतोर्लिङ् ५१५
हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७३
ह्म्यन्तक्षणश्वस० २४५
ह्रस्वः ११४
ह्रस्वादङ्गात् २३७
ह्वः सम्प्रसारणम् २७१

एतद्ग्रन्थोपात्तधातूनां सूची

(अत्र धातूनां निरनुबन्धकरूपाणि दीयन्ते)

अंह् ५९, १८९
अक्ष् ६५
अगद् ४४७
अङ्क् ५९, १९५
अङ्ग् ५६, ५७
अज् ३६,३८,३२८,३४६
अड्ड् २७६
अञ्च् ३७,३९,४६,३३०,३४४,४८७
अञ्ज् १६४,२१९,२४८,३३०,३४४,
३७१,३७२,४८७
अट् ३६,३८,२५२,२७५,३९२
अट्ट् १८२
अड् ३७
अण् ३७
अत् ३७,२५२
अद् ७२,१९९,२३०,३०२,३४९,३६१
अन् १०३,१०४,१०५,३७३,३७४
अन्त् ५६
अन्द् ५६
अन्ध् १९५
अभ्र् ५१
अम् ३७,१८८,३५९
अम्ब् ५९,६०
अम्भ् ६०
अय् ४८,४९,३३३,३३५
अर्क् १८५
अर्घ् ७२
अर्च् ३६,१९०,२७५,३३०
अर्ज् १८८,३३०
अर्थ् १९४,२७७
अर्थापि २६७,२७४
अर्द् ३८,४०,१९०,३३०
अर्व् ३८
अर्ह् ३६,३८,१८८,१९०,३३०
अल् ५१,२५४
अव् ३७,४२१
अश् १४२,१७६,२७५,३३१,३४६,
३४९,३७१,३७२,३९२
अस् १०१,१०२,१३४,२१२, २२५
२३०,२३२,३४९,४५६
असु ४४६
असू ४४६
आन्दोल् १९६
आप् १४१,१९१,२००,२२२,२३२,
३७९,३८०
आस् ८४,३३३,३३५,३४९
इ (इक्) ९४,९५,१९८,२१३,२५९

इ (इङ्) ८७,१५०,१९८,२०९,२१३,
२३६,२७३,२७४,३२०, ३५०,
३८२,३८६,४७१,४८९

इङ्ख् ५६

इङ्ग् ५६,५७

इ (इण्) ९४,१९८,२१३,२५९,
३२०,३४२,३४३,३५३,३८२,
३८७,४८६,४८९

इन्द् ५६,३३५,३४४,३८८

इन्ध् १९१

इरज् ४४६

इरस् ४४६

इर् ४४६

इल् १५०,१८५

इष् १२४,१४९,१७७,२११,२२४,
२५४,३२०,३७५

इषुध् ४४७

ईक्ष् ५४,५५,२१८,२४०,३७५

ई १२९

ईज् ३४

ईड् ८३,१८५

ईर् ८२,१९०

ईर्ष्य् ५२

ईश् ८३

ईष् ३४,५५

ईह् ३४,३३६

उक्ष् ५२

उख् २९,३२०,३७५

उच् १३५

उच्छ् ५२,१४७,३७२

उज्भ् १४८

उञ्छ् १४७

उन्द् १९४,२७६,३३५,३४४ ४८७

उब्ज् १४८, २७५

उभ् १४८

उम्भ् १४८,३४४,४८७

उरस् ४४७

उर्द् ५५,३३५

उष् २९,३२०,३३६

उषस् ४४६

ऊन् १९४,२७७

ऊर्ज् १८२

ऊर्णु ९३,२११,२१४,२६७,३२७,
३४३,३८३,३८४,३९२,३९६

ऊष् ३५

ऊह् ३५,३४७,४५६,४८६

ऋ १९,२२,१२०,१२१,१८४,२०७,
२३०, २३२,-३३, २४६, २७३,
३०२, ३४५, ३४९,३७१,३७२,
३९२, ३९८, ४५६, ४८७

ऋच् १४८,३३०

ऋच्छ् १४७,३०२,३३१,४५६

ऋज् ३२

ऋण् ७३,१९७

ऋत् ७१,२२०,३३०

ऋध् १३७,१४२,२३२,३३१,३७९,
३८३

ऋफ् १४८

ऋम्फ् १४८

ऋष् १४७

ऋ १७३
एज् ६२
एध् ५४, २७६
एष् ६२
ओण् ३१, २८२
कक् ४५, ४६
कच् ४५, ४६
कट् ६७, २५३
कठ् ३७
कड् १५१, २५५
कण् ३७, १८७, २८५, ३५५
कण्ठ् १९२
कण्ड् १८३
कण्डु ४४६
कत्थ् ४५
कथ् १९२, २२०, २६९, ३४६
कन् ३७, ३९
कन्द् ५६, ३५५
कब् ६२
कम् ४८, २२३, २६५, २७५, २८८, ३३४, ३५९
कम्प् ५९
कर्ण् १९५
कर्द् ३८
कर्ब् ३८
कल् ४५, ४७, १८४, १९३, २७७
कस् ३७, ३९, ३९४, ३९८, ४२२
काङ्क्ष् ५६, ३४४, ४८८
काश् ६१, १२७, २८२
कास् ६२, २८२
किट् २८
किल् १५०
कु ८९, १५२, ३९५, ३९९
कुच् २९, १५१, २२६, २५५
कुञ्च् ५२
कुट् १५०, २२६, २५५
कुट्ट् १८२, १८७
कुड् १५१
कुण्ड् ५९, ६०, २५५५
कुत्स् १८६
कुथ् १२४
कुप् १३७, २३१, ३७७
कुमार् १९३, २७८
कुम्ब् ५६, १८५
कुर् १४९
कुर्द् ५५
कुव् १७६, २२४
कुष् २१०, २२४, २५०, ५००
कुस् १३५, २३२
कुस्म् १८७
कुह् १९४
कूङ् १५२
कूज् ३५
कूण् १८६, १९४
कूल् ३५
कृ १००, १४०, १६७, १६८, १६९, १७०, १९९, १९८, २०७, २१६, २३९, २४६, २८६, २९६, ३००, ३०४, ३३४, ३४५, ३४९, ३६२ ३९८, ४१०, ४५७, ४५८, ४६७, ४७०, ४८५, ४८७, ४८८, ४८९,

४६६, ५२४
कुण्व् ५७, ५८
कृत् १४५, १६१, २११, २२०, ३७७
कृप् ३२, २१२, २२२, २३४, २३६, २६६, ३४६, ३६७
कृश् १३६, २३२
कृष् १४४, २०१, २२४, २४५, २५०, २६३, २६७, ३४६, ३७८, ४२७
कॄ १५३, १७३, २१७, २४७, ३०३, ३४५, ३७६, ३८०, ३६६, ४१०, ४५१-५२, ४८७
कॄत् १८५, २७६, ३४५, ३६६, ४८७
केत् १६४
कै २५, २५८
क्नस् ३५७
क्नूय् ३५, १८४, २७३, ३४६
क्रथ् ३५५, ४८६
क्रन्द् ५६, १८८, ३४४, ३५५, ४८८
क्रप् ४५
क्रम् ४१, २११, २२३, २५३, २८८, ३५८, ३७४, ३६७, ३६६, ४५६, ४६०, ४६१
क्री १७०, १७१, २१५, २३८, २४६, २७३, ३५०, ३६६, ४४६
क्रीड् ६०, ४५०
क्रुञ्च् ५२
क्रुध् १३०, २००, २२२, २३१, ३७७
क्रुश् २६, २००, ४०८
क्लन्द् ५६, ३५५
क्लम् २६, ४१, ४२, १३४, २२३, २३२, ३५८, ३७४
क्लिद् १३६, २२०
क्लिन्द् ५६, ६०
क्लिश् १२७, १७६
क्वण् ३७
क्वथ् ६७, २५३
क्षण् ७३, १६७, २४२, २४५, २५३, २७१
क्षप् १६६
क्षम् ६५, १३४, २२३, २३२, ३११, ३५८
क्षर् २५४, ३६४
क्षल् १८३
क्षि १२, १३७, १५२, ३४२, ४८६
क्षिण् ७३, १६७, २४२
क्षिप् १२४, १४४, २००, ३४६, ३७५, ४७०
क्षी १७५
क्षु ८६, १६८, २१३, ३४३, ३६५, ४८६
क्षुद् १५६, १६०, १६६, २३३
क्षुध् १३२, २००, २३१
क्षुभ् ३२, १३६, १७६, २३२, २३४, ३७७
क्षुर् १४६
क्षै २६, ३५७
क्ष्णु ८६, १६८, २१३, ३४३, ४६६
क्ष्माय् ४४, २७३, ३४६
क्ष्मील् ३४
क्ष्विद् ३०, २३४

खच् १७७
खज् ३८, ४०
खञ्ज् ५७, ३४४, ४८८
खड् १८३
खण्ड् १८३
खन् ७३, २३८, ३००, ३४३, ३७४, ४१३, ४८६
खर्द् ३८
खर्व् ३८
खल् ५१
खव् २७७
खाद् ६१, ३६१, ४१५
खिट् २८
खिद् १२७, १४५, १६१
खुर् १४९
खुर्द् ५५
ख्या ९८, २३०, ३८१
गण् १९२, २९९
गण्ड् ५६, ५७
गद् ४१, १९२, २५१, ३९७, ४४७
गन्ध् १८६
गम् ६९, ७३, २००, २०५, २०७, २३२, २३८, २४२, २८८, ३०९, ३५८, ३७४, ३९७, ३९९, ४११, ४४८, ४५१, ४५६, ४८९, ५२७
गर्ज् ३६, १८५
गर्द् ३८, ४०, १८५, २५२
गर्व् ३८, १९४
गर्ह् ४५, १९२
गल् ५१, १८६
गल्भ् ४५, ४६
गल्ह् ४५
गवेष् १९३
गाध् ६२, २८२, ४१५
गाह् ६५
गु १५२, २२७
गुञ्ज् ५६, २५५
गुड् २२६
गुण्ठ् १८३
गुध् १२४, १७६
गुप् ४८, २१३, २२२, २५६, ३३४
गुफ् १४८
गुम्फ् १४८, ३४४, ४८७
गुर् १५२, २२७, २५६
गुर्द् ५५
गुर्व् ५३
गुह् ६६, १३०, २२५, २४४, २५३, २६०, २९२, ३४६, ३६६, ३७०
गूर् १२६, १८६
गृध् १३७, २३२, ४०९, ४६७
गृह् ६५, २६१, २७७, २९४
गॄ १५३-५४, १७४, ३०३, ३४५, ३७९-८०, ३९९, ४६३, ४८७
गेष् ६२
गै २६, २१८, २५८, २७४, ३४३, ३९६, ४८८

गोम् १६३
ग्रन्थ् ५६, १६०, ३२५, ५००
ग्रस् ४६, १८६
ग्रह् १७८, २११, २२५, २४४, २५२, २७६, २८७, ३१२, ३४४, ३४६, ३६६, ३८१, ३९७, ४०७, ४८६-८७

ग्रुच् २६, २३३, २५१
ग्लस् ४६
ग्लुच् २६, २३३, २५१
ग्लुञ्च् २३३
ग्लै २७, २५८, २७४, ३४४, ३५८-५९

घट् ४४, १८८, ३५४, ४२९
घट्ट् ४५, १८५
घस् ७३, १०७, २०१, २२५, २३२, ३०९-१०

घुट् ३२, १५१
घुण् १४९
घुर् १४९
घुष् ६८, १८८
घूर्ण् ५५, १४९
घृ १८५
घृण् ७३, १६७
घृष् ३३
घ्रा २२, २३, २१४, २५७, २६०, २७९, ३०७, ३४४, ३६४, ३९८, ४२०

चक् ४५, ३५५
चकास् १०५, १०७, १९८, २५२, २६७
चक्ष् ८१, २१२, २१८, २३२, २४३, ३२६, ३४७
चञ्च् ३८, ४०
चण्ड् ५९
चत् २५३
चद् २५४
चन्द् ५६
चम् २६, ४२, २८८, ३५९
चर् १८८, २५४, ३२१, ३७४, ३९४, ३९७, ३९९, ४१६, ४६३, ५२८

चर्च् १८७
चर्व् ३८
चल् ५१, २५४, ३२१, ३५६
चह् १८४, १९३
चाय् ६३, २८२, ३९५, ४१६
चि ४१, १४०, १८४, १९८, २१४, २४६, २९७, ३४२, ३४९, ३५२, ३७०, ३९५, ४८६

चित् २८, १८६
चित्र् १९५
चिन्त् १८१, २६९
चिल् १५०
चीव् ६३
चुम्ब् ५६
चुद् १८३
चुर् १७९, १८०, २६८, ३३४,

३४६, ३४९
चुलुम्प् ३३३, ३३५
चूर् १२६
चूर्ण् १८५
चूष् १४९
चृत् १४९, २११, २२०, ३९७
चेष्ट् ५४, २७१
च्यु १८, २७०, ३८५-८६
च्युत् ६८, २३३
छद् १९५, ३५७
छन्द् १८३
छर्द् १८३
छिद् १५८, १६०, १९९, २२०, २३२, २४१, २४९, ३४५, ३७५, ३९६, ३९९
छिद्र् १९५
छुर् १५१, १६८, २२६, २५५
छृद् १५९, २११, २२०
छो १२५, २१७, २५८, २६०, २७८, २८१, ३५०

जक्ष् १०३, १०५
जन् ७३, १२५-२६, २३७-३८, २४१, ३०९, ३४९, ३५७, ३६३, ३७४, ३९७, ४१३, ४७१
जप् ३७, ३७३, ३९३, ३९७, ३९९, ४१४
जभ् २२२, ३९३, ३९७, ३९९, ४१४
जस् १३५, १८५, १८८
जागृ १०५, १९८, २१७, २४४-४५, २५३, २६८, २७६, २८९, ३०५, ३३६, ३४५, ३४९, ४८७
जि ११, १९८, २१५, २३८, २४६, २७३-७४, ३४२, ३५०, ३७०, ३९५, ४५०, ४८६
जिन्व् ५७
जीव् ३३, २८३-८४
जु ३८७
जुड् १५१
जुष् १४६, १९१
जूर् १२६
जृम्भ् ५९, ६०
जॄ १२४-२५, १७३, १९०, २३३, २४७, ३२२, ३४५, ३५७, ४८७

जै २६
ज्ञप् १८४, ३७९, ३८३, ३८५
ज्ञा १२५, १७५, १८८, २३९, २५७, २८७, ३०७, ३५०, ३५६, ३८१, ४६१, ४६४, ४६८
ज्या १३०, १७४, ३४४, ४८७
ज्वर् ५०, २५४, ३५५, ४२१
ज्वल् ५१, २५४, ३५५-५६, ३९७
झॄ १२४
डी १६, १२९, १९८, २१३, २१५, २३८, ३९६

ढौक् ६२, २८२
तंस् १८८
तक्ष् ६४, २१८, २५२, २६१, २६८, २७६
तङ्क् ५६, ५७
तञ्च् ३८, १६५
तड् १८३
तन् ७३, १००, १६५-६६, १६१, २२१, २३८, २४२, २५२, २८६, ३२१, ३४६, ३७८-७६-८०, ३६७, ४१३, ४८८-८६
तन्त्र् १८६
तप् ४२, १६०, २००, ४५५, ४८६, ४६६
तम् २२३, २३१, ३५८
तर्ज् ३६, १८६
तल् १८३
तस् १३५, २३२
ताय् ६२, २३७, २४१
तिज् १८५
तिप् ६२
तिम् १२४
तिल् १५०
तीर् १६५
तीव् ३४
तुज् २६, १८३
तुञ्ज् १८३
तुड् १५१
तुद् १४३, १६६, २२०, २४१, २४६, ३४६, ३७५, ३६६
तुप् १४८
तुफ् १४८
तुभ् ३१, १७६, २३४
तुम्प् ५५, १४८
तुम्फ् १४८
तुम्ब् ५६
तुरण् ४४७
तुर्व् ४२२
तुल् १८३
तुष् १३२, २२४, २३१, ३७६
तूण् १८६
तूर् १२६
तूल् ३५
तूष् ३५
तृण् ७३, १६७
तृद् १५६, १६१, २११, २२०, २३३, ३६७
तृप् १३३, १४२, १४८, १६०, २००, २१०, २२२, २३१, २४५, २५०, ३७७, ३६७, ४१७
तृम्फ् १४८, ३४४, ४८७
तृष् १३६, २३१
तृह् १६३, २२५
तॄ २१, २०१, २१७, २४६, ३२४-२५, ३४५, ३८०, ३६६, ४११, ४८७
तेप् ६२
त्यज् १६६, २१६ ३७३
त्रप् ६५-६, २००, २२२, ३२४-२५, ३५७

त्रस् ४१, १२४, २५१, ३२२-२३
त्रुट् ४१, १५१, २२७, २५५
त्रै २६
त्वक्ष् ६४, २१८, २६१
त्वच् १४८
त्वर् ४५, २७०, ४२१
त्विष् ३०, २०१
त्सर् ५१, २५४
दंश् ४३, १८६, २००, २२३, २४९, ३४४, ३९७, ४१४, ४८७
दंस् १८६
दक्ष् ४५, ४७, ३५५
दण्ड् १९५
दद् ३२६
दध् ४४
दम् १३४, २२३, २३१, ३५८, ४७२
दम्भ् १४२, ३२५, ३८२-८३-८४
दय् ४५,४६, ३३३, ३३५
दरिद्रा १०५-६, १९८, २१३-१४, २५९, ३७८-७९
दंश् ३९३, ३९९
दर्शि ३७३
दल् ५१, १८९, ३५७
दस् १३५, २३२
दह् २०१, २२५, ३९३, ३९७, ३९९, ४१४
दा २२,२३, ९७, ११६-१७, २१४, २४०, २६०, २७४, २८९, ३०७, ३४३, ३४९, ३८१, ३९६, ४१७, ४५०, ४६४, ४८८
दाश् ६३
दास् ६३, २८२
दिव् १२२, १८७, २२३, २५०, ३४३, ३८३, ४८६
दिश् १४४, २००, २२४
दिह् ४१, ७९, २०१, २२५, २६२, २७०
दी १२८, २१०, २१५, २३९, ३२८, ३४३, ३७१
दीक्ष् ५४
दीप् १२६, २३७, २४१, २८३-८४
दु १७, १४०
दुःख् १९५, ४४७
दुल् १८४
दुवस् ४४७
दुष् १३२, २०१, ३५३
दुह् ७८, २०१, २२५, २६०, २६३, ३७७, ३९६, ४९७-९८
दू १२८
दृ १४७, २१७, २३९, ३७९-८०
दृप् १३३, १४८, २००, २१०, २३१, २४५, २५०, ३७७, ३९७
दृभ् १४९, १९०
दृम्फ् १४८

दृश् २२, ६८, २००, २१२, २२४, २३२-३३, २४६, २८८, ३०८, ३३४, ३७८, ३९७, ४००, ४१७, ४५६, ४६४, ४८६, ४८९
दृंह् ५७
दृह् ५७
दॄ २२, १७३, २७०, ३२६, ३४५, ३५६, ४८७
दे २४, २१७, ३२७, ४८८
देव् ६२
दै २६, २१८, २५९
दो १२५, २१७, ४८८
द्यु ८९
द्युत् ३१, २३४-३५, ३७६
द्यै २६
दो २६०
द्रम् ३७, ३९७, ३९९
द्रा ४१, ९७, २५७, ३८२
द्राघ् ६२, २८२
द्रु १६, १९८, २६३, २६९-७०, २९६, ३०३, ३८५-८६, ४७१
द्रुह् १३३, २१०, २२५, २३१
द्रै २६
द्विष् ७६, २०१, २६०
धा ११७, १८, २१४, २४०, २६०, २७४, २८९, ३०७, ३४३, ३४९, ३८१, ३९६, ४१८, ४८८
धाव् ४९, ५०, १९९
धि १५२
धिक्ष् ५५
धिन्व् ५७-५८
धी १२९, २४०
धु १४०
धुक्ष् ५५
धुर्व् ५३
धू १४०, १५२, १७३, १९१, २१०, २१६, २२७, २४७, २५५, २९७, ३०६, ३४६
धूप् ३५, ४८, २२२, २५६
धूर् १२६
धृ २१, १४७, १९६, ३४५, ३७९, ३८०, ४८७
धृष् १४२, १९२
धे २३, २१७, २५८, २६०, २६३, २७४, २८९, ३४३, ३४९, ४१८, ४८८
धोर् ६१
ध्मा २२-३, २१४, २५७, ३९४, ३९८, ४१०
ध्यै २६, २१८, २५८, ३४४
ध्रु १७, १५२
ध्रुव् १५२, २५५
ध्वंस् ४५, ४७, २३४-३५, ३९४, ३९७, ४८७
ध्वन् ३८, १९४, ३२४, ३५७
ध्वृ २१, ३०५, ३४५
नट् १८२, ३५५

नद् ४१, २५१, ३४६, ३६७
नन्द् ५६, ३४४, ४१६, ४८८
नभ् १३६, १७६, २३४
नम् ३७, ३६, ७३, २००, २२३, २५७, ३२१, ३५५, ३५८, ३७४, ३६७, ४१३, ४६७, ४६६
नर्द् ३८, ४०, २५२
नश् १३३, २१०, २२४, २३१, २६६, ३२१, ३४६, ३७४, ३६५, ४२०, ४७१
नह् १३०, २०१, २२६, ३८१, ३६७, ४०७
नाथ् ६२, २८२, ४५१
नाध् ६२, २८२
नास् ६२
निंव ५७
निंस् ८५, ३४५
निज् ११८-१६, १६६
निञ्ज् ८५, ३४५
निन्द् ५६, ३४४, ४८८
निवास् १६४
नी १५, २१५, २३८, २४६, २८७, २६६, ३४२, ३४६, ३६१, ३७०, ३६५, ४५८-५६, ४८६
नीव् ३४
नु ८६, १६८, २१४, ३४३, ४५२
नुद् १४४, १६६, २२०, ३७५, ३६६
नू १५२, २२७, २५५-५६
नृत् १२३, २११, ३७७, ३६७, ४१७, ४७२
नॄ १७३
पक्ष् १८२
पच् ४६, १६८, २१८, २४०, २४७, २८८, २६७, ३२१, ३७२, ३६६, ४६७,६८
पञ्च् ५६,६०, १८५
पट् ३७
पठ् ३६, ३८, २८८, ३२१, ३७३, ३६६, ४००, ४१६
पण् ४५, ४८, २२०, २५६
पण्ड् ५६
पत् ४१, ६६, १२६, १६२, २३०, २३२, ३२१, ३७८-७६, ३६४, ३६८, ४२२
पथ् ६७, २५३
पद् ४१, १२७, १६४, १६६, २००, २३७, २४१, २६६, २७७, ३७८-७६, ३६४, ३६८, ४२२
पन् ४८, २२२, २५६
पन्थ् १८३
पर्ण् १६६
पर्द् ४५
पश् ७१, १८८, ३६३
पा २२, ६७, २१४, २५८-५६-६०,२७८,३०७,३४३, ३५०, ३६४, ३८१, ३६६, ४१८, ४७२, ४८८

पार् १९५, २७७
पाल् १८४
पि १५२
पिज् १८३
पिञ्ज् १८३
पिण्ड् ५९,६०, १८५
पिन्व् ५७
पिश् १४५
पिष् १६२, २०१, २२४, २३२
पिस् ६१, १८३
पी १२९, २१५
पीड् १८२, २७५, २८३
पीव् ३४
पुट् १५१, १९५
पुण् १४९
पुर् १४९
पुष् २९, १३१, १७७, १८९, २०१, २२४, २२९, २३१, २५१, ३७६
पुष्प् १२४
पू १९, १७२, २०२, २४७, २८१, ३२६, ३७०-७१-७२, ३८७, ३९६, ३९९, ४०६, ४८९
पूज् १८५
पूय् ३५
पूर् १२६, १८९, २३७, २४१
पूल् ३५
पूष् ३४, २२४
पृ ११३, १४६
पृच् ८५, १६५, १९०
पृण् १४९
पृथ् १८२
पृष् ३२
प्ॄ ११२-१३, १७३, १८२, ३२६-२७, ३४५, ४८७
पेस् ६१
पै २६, २५८
प्याय् ४४, २३७, २४१, ३२८, ३९५, ३९८
प्रच्छ् १३०, १५४, १९९, २१९, २४७, ३१५, ३४४, ३७९-८०, ३९७, ४१४, ४५२, ४५६, ४८७
प्रथ् ४५, १८२, २७०
प्रा ९७
प्री १२९, १७२, १९१
प्रु १९, २७०, ३८५ - ८६, ४७१
प्रुष् १७७
प्रेङ्खोल् १९६
प्ली १७४
प्लु १९, २७०, ३८५-८६
प्लुष् १२३, १३५, १७७, २३२
प्सा ४१, ९७
फक्क् ३८
फण् ३२३, ३५९
फल् ५०-१, २५५, ३२४-२५, ३९७, ४२६

बंह्	५९
बध्	१८२
बन्ध्	१७५, २००, २२१, २४९, ३४४, ४८७
बल्	१८४
बस्त्	१८६
बाड्	२८२
बाध्	६२, २८२
बाह्	६२, २८२
बिन्द्	५६-७
बिम्ब्	७१
बिल्	१५०
बुक्क्	५१, १८७
बुध्	२८, ६७, १२७, २००, २२१, २३२, २४१, ३४९, ३७६, ३९६, ४७१
बुस्	१३५
ब्रू	९१, १९८, २१२, २१६, २३२, ३७२, ३९६, ४९९
बृंह्	५७
भक्ष्	१८२, २७६, ३६१
भज्	४९, १८८, १९९, ३२४-२५
भञ्ज्	१६२, १९९, २१९, २४८, २९०, ३९३
भण्	३७, २८५
भन्द्	५९
भर्त्स्	१८६
भल्	१८६
भल्ल्	४५
भष्	३७-३८
भा	९७
भाज्	१९४
भाम्	४५-६, १९३
भाष्	४५, २८३-८४
भास्	६२, २८३-८४
भिक्ष्	५४
भिद्	१५८-५९, १९९, २२१, २३३, २४१, २४९, २९७, ३११, ३४५, ३७५, ३९६, ३९९, ४०७
भिषज्	४४७
भी	११०-११, २१५, २४६, ३३३, ३३५, ३४३, ३५०-५१, ३९६
भुज्	१५४, १६३, १९९, २१९, २४०, २६९, ३४९, ३७७, ३९६, ४६६
भू	९, ८५, १८९, १९१, २०२, २०५-६, २०९, २५९, २८१, २८६-८७, २९९, ३४१, ३४८, ३६८, ३८७, ४०४, ४८५, ४८९, ५२३
भृ	२०, २१, ११३, १९८, २९६, ३३३, ३८३, ३८५, ४८७
भृश्	१३५, २३२, २४९, २६३
भॄ	१७३
भेष्	६३, २८३
भ्यस्	४५, ४७
भ्रंश्	४५, १३५, २३२, २३४-३५, ३४४, ४८७

भ्रंस् ४५, २३४, ३६४, ३६८
भ्रम् ४१-२, १३४, २२३, २३२, २५३, २८८, ३२२-२३, ३७४, ३६७
भ्रस्ज् १३०, १४४, १६६, २१२, २१६, ३१६, ३४४, ३८३, ४८७
भ्राज् ६२, २६८, २८३, ३२४
भ्राश् ४१, ६२, २८३, ३२४
भ्री १७५
भ्रेज् ६२, २८३
भ्लाश् ४१, ६२, ३२४

मंह् ५६, १८६
मगध् ४४७
मठ् ३७
मण्ड् १८३
मथ् ६७, २५३
मद् १३४, १८७, २३१, ३५७
मन् ७३, १२८, २००, २२२, २४२, २८६, ३४६
मन्तु ४४६
मन्त्र् १८६
मन्थ् ३७, १७६, ३४४, ४२२, ४८७
मन्द् ५६,६०, ३४५
मल् ४५, ४७
मल्ल् ४५
मव् ३७-८, ४२१
मस्ज् १५४, १६६, २१६, २४८, ३६४
मह् १६३, २५२, २७७
मही ४४७
मा ४१, ६७, ११३-१४, १२६, २१४, २४०, २५७, ३०७, ३४३, ३५०, ३७८, ३८१, ३६६, ४८८
माङ्क्ष् ५६
मान् १८७, १६१
मार्ग् १६२
मि १४०, २१०, २१५, २५८, ३०७,३४२,४८६
मिद् ३०, १३७, २३१, २३४-३५
मिल् १४४, ३४६
मिन्व् ५७
मिष् १५०
मिह् २०१, २२६
मी १२६, १७२, २१०, २१५, २४०, २५८, ३०७, ३४३, ३७८
मीम् ६१
मील् ३४, २८३-८४
मीव् ३४
मुच् १४४-४५, १६८, २१८, २३२, २४०, ३६४
मुण्ड् ५६
मुद ३१, १८८, ३४६, ३४६, ३७६, ३६६, ४०८
मुर्छ् ५३, ४२३
मुर्व् ५३

मुष् १७७,२२४,२५१,३७६
मुस् १३५
मुह् १३३,२१०,२२६,२३१,४७२
मू १९
मूत्र् १९५,३९२
मूल् १८४
मूष् ३५,२२४
मृ १४७,२१७,२३९,३०२,३४५ ३४९,३८२,४१०
मृग् १३७,१९४
मृज् १०२,१०३,१९२,२१९,२४८, ३७३,३९७,४१७
मृड् १४९,१७६
मृण् १४९
मृद् १७६
मृश् १५५,२००,२२५,२४५,३९७
मृष् ३२,१३०,१९२,४७१
मॄ १७३,३०३,३४५,४८७
मे २४,३८२
मेध् ६३,२८३
मेधा ४४७
मोक्ष् १८८
म्ना २२,२३,२५७
म्रक्ष् १८५
म्रद् ४५,२७०
म्रुच् २९,२३३,२५१
म्लुच् २९,२३३
म्लेच्छ् ५४
म्लै २६,२५८,३४४
यक्ष् १८६
यज् ४९,५०,१९९,२१९,२४०,२९७, ३१४,३४४,३४६,३७३,३९७, ४२०,४८७
यत् ४५,१८८
यन्त्र् १८१
यभ् ३७,२००,३२१
यम् ४१,७३,१८४,१९६,२००,२३८, २४३, २५७,३५९, ३७४,३९७, ४१२,४५५,४६४,४६८,४७२
यस् १३५,२३२,४७२
या ४१,९६,२५८, २९७,३०७, ३४९, ३८१, ३९६, ४८८
याच् ६३,२८२
यु ८८,१७२,१९८, २१४,२८१, ३४३,३८३,३८४,३८७,४०६ ४८६
युच्छ् ५२
युज् १२८,१५९,१६०,१९०,१९९, २१९,२३३,२४०,२४८,४६६ ४९८
युध् १२८,२००, २२१,२४१,३४९, ३६४,३७६,४७१
रक्ष् ३८,२५२,२६८,२७६
रङ्ग् ५६
रङ्घ् ५९,६०, १८९
रच् १९३,२१८,२६९
रञ्ज् ४३,४९, १९६, १९९,२१९, २४९,३४४,३५८,४८७,५००
रट् ३७
रण् ३७,२८५,३५५,३५७
रद् ३७,३९
रध् १३३,२१०, २१३,२२१,२३१, ३२३

रभ् २००, २२३, २४२, २७२, २७३, २८६, ३४६, ३५३, ३७८, ३७६ ३६७, ४२०
रम् ७३, २००, २२३, २५७, ३६३, ३६४, ३७४, ३६७, ४१२, ४७१
रम्ब् ५६
रम्भ् ६०
रय् ४५, ४६
रस् ३८
रंह् ५७
रह् ३७, १८४, १६३, २६६
रा ६७, २५८
राघ् ६२
राज् ६३, २८३, ३२४
राध् १३०, १४१, २००, २२६, २५०, २६७, ३२२, ३७६, ३८०
रास् ६२, २८३
रि १५२
रिङ्ख् ५६, ५७
रिच् १५८, १६०, १६०, १६८, २१८, २३३
रिफ् १४८
रिश् २००, २२५
रिष् २८, १३६, २११, २२५
री १२६, १७४, १८४, २७३, ३४६
रु १६ ८६, १६६, १६८, २१४, २८१, ३४३, ३७२, ३८७, ४८६
रुच् ३१, २१८, २३४-३५, ३४६, ३७६, ४७२
रुज् १५४, १८६, १६६, २१६
रुट ३१, ५६
रुद् १०३-४, २३२, २५०, ३७६, ३६६, ४०८
रुध् १२८, १५५, १५७, १५६, २००, २२१, २३२, २४१, २४६, ३४६, ३७६, ३६६, ४६६
रुश् १५४, २०१, २२५
रुष् १३६, २११, २२५, २३२
रुह् २६, २०१, २२६, ३५३, ३६४, ३७६
रूक्ष् १६५
रूष् ३५
रेक् ६२, ६३
रेभ् ६२, २८३
रेव् ६२
रेष् ६२, २८३
रै २५८
लक्ष् १८२, १८६
लग् ६७
लङ्ख् ५६, ५७
लङ्घ् ५६, ६०, १८६
लज् ३८, ४०, १४६
लड् ३७, ३५७
लप् ४४६
लभ् २००, २२३, २४२, २७२, २७३, २८६, २६०, ३४६, ३५३, ३७८, ३६७
लम्ब् ५६
लल् १८६
लष् ४१

लस् ३७
लस्ज् १४६
ला ६७, २५८, ३५२
लाघ् ६२, २८३
लिख् १५०, ३७५
लिङ्ग् ५६, १८८
लिप् १४५, २००, २२२, २३०, २३३
२४२, ३७५
लिश् १२८, १५४, २०१, २६३
लिह् ८०, २०१, २६०, २६३, ३७५,
३६६
ली १२६, १७४, १६०, २१०, २१६
२४०, ३५१
लुञ्च् ५२
लुट् ३१
लुठ् ३१, १३५, २५५
लुण्ट् ५६
लुण्ठ् १८३
लुप् १४५, २००, २२२, २३२, २८५,
३६६, ३६६
लुभ् १३६, १४८, २११, २२३, २३२,
३७७
लुम्ब ५६
लू १७२, २०२, २१६, २३८, २४७,
२८१, ३२६, ३३४, ३७०, ३८७,
३६६, ३६६, ४००, ४०६, ४४८,
४८६
लूष् ३५
लोक् ६२, २८३
लोच् ६२, २८३
लोड् २८३
वच् ६८, १६१, १६६, २३०, ३१२,
३४४, ३४६, ४२०, ४८७
वज् ३६
वञ्च् ३८, ४०, १८७, ३६४, ३६७,
४२२, ४६७
वण् ३७
वण्ट् १८३
वद् ३६, १६१, २४४, २५१, ३१३,
३४४, ३४६, ३६६, ४१६, ४६२,
४६८, ४७२, ४८७
वन् ३७, ३८, २४२, ३५८, ३५६
वन्द् ५६
वप् ४१, ४६, ३१३, ३४४, ३४६,
३६६, ४८७
वम् ३७, २५३, २८८, ३२६, ३५८,
३५६
वय् १३०, ३१७
वर् १६२
वर्च् ४५
वर्ण् १६५
वर्ध् १८५
वल् ४५, ४७, ३५७
वल्ग् ३७, ४४६
वल्ल् ४५, ४७
वश् १०८, १३०, ३४४, ३६६, ४२०,
४८७
वस् ३६, ८५, १०७, १८८, २०१,
२२५, २५०, ३१३, ३४४, ३७४
४७२, ४८७
वह् ३३, ४१, ४६, १६६, २०१, २२६,

२४४,२५०, ३१३, ३४४,३४६, ३६१, ३७४,३९६, ४०७, ४७१, ४८७

वा ४१, ९७, ३०७, ३५२

वाञ्छ् ५६, ३४४, ४८८

वाड् ६२

वात् १९३

वावृत् १२७

वाश् १२७

वास् १९३

विच् १५६, १६०, १९६, २१८, २३३

विच्छ् ४८, १५४, २१८, २५६

विज् ११८, १२०, १४६, १६५,२११, २१९, २४१, ३४५

विद् ३३, ९९, १२७, १४५, १६१, १८७, १९९,२३२, २४१,२५०, ३३६, ३४५, ३७५, ४५६

विध् १४९

विल् १५०, १८४

विश् १५४, २०१, ३७५, ४४९

विष् ११८, १२०, १७७, २०१,२३२

वी ९५, ३५२

वीज् ७१

वीर् १९४

वृ १७७, १९०, १९८, २११, २१७, २४५, २४६, २९६, ३४६, ३८०, ३९८, ४१०

वृक् ३२

वृज् ८५, १६५, १९०

वृत् ३१, १२७, २१२, २२०, २३४, २३५,३७७, ३९७, ४००, ४०८

वृध् ३२, २१२, २२१, २३४, २३६, ३६३, ३७७, ३९७

वृष् ३२, १८७

वृह् १४६, २६१

वॄ १७३, ३०३, ३४५, ३४६, ४८७

वे २४, २५, २५८, २७८, ३१६, ३४४, ३४६, ३५०, ४८७

वेद् ४४६

वेप् ६२, ६३

वेष्ट् ५४, २७१

वै २६,२५८

व्यच् १३०, १४७, २५१, ३१६, ३४४, ४८७,

व्यथ् ४५, ४७, ३१८, ३५५

व्यध् १३०,१३१, २००, २२१, २२६, २५०, ३१८, ३४४, ४८७

व्यय् २५३

व्युष् १२३

व्ये २५, २५८, २७८, २८१, २८२, ३०२, ३१७,३४४, ३४६, ३५०, ३९४, ३९८, ४०९, ४८७

व्रज् ३६, २४४, २५१, ३७३

व्रण् १३०

व्रश्च् १३०, १४७, २१८, २४८, ३१९,३४४, ३९७, ४१५, ४८७

व्री १७५

व्रीड् १२४

व्रुड् २२७

व्ली १७४, १८४, २७३, ३४९
शंस् ३८, ५९, ३४४, ४८७
शक् १३२, १४१, १९८,२१८, २३२, ३२१, ३७८, ३७९, ४५१
शङ्क् ५९
शच् ४५, ४६
शठ् १८३
शद् २२, ७०, १९९, २२१, ३५२, ३९७
शप् ४९, १३०, २००,२४९, ३२१, ४१९,४५२
शब्द् १८७
शम् ४१, १३३, १३४, १८६, २२३, २३१, ३२१,३५८, ३५९,३९७, ४१४, ४८५, ४८८
शर्व् ३८
शल् ४५, ५१, २५४
शव् ३७, ३९
शश् ३७, ३९, २५१
शस् ३८, ४०, २५१, ३२६
शाख् ६१
शास् ८४, १०५, १०७, १०८, २२५, २३०, २३२, २८२, ३४७
शि १४०
शिक्ष् ५५
शिङ्घ् ५६, ५७
शिञ्ज् ८५, ३४५
शिल् १५०
शिष् २८, १६१, १६२, १९०, २०१
शी ८६, १९८, २०६, २०९, २३६, २३७, ३००, ३४९,३७२, ४२१, ४८८
शीक् २८३
शीभ् २८३
शील् ३४, १९३
शुच् २९, १३०, २३२
शुच्य् ५२
शुण्ठ् १८५
शुध् १३२, २००, २३१
शुन् १४९
शुन्ध् १९०
शुभ् ३१, ५२, १४८, २३४, २३५, ३७७
शुम्भ् ५२, १४८
शुल्क् १८४
शुल्ब् १८४
शुष् १३२,२०१,२३१,३६४
शूर् १९४
शूल् ३५
शृध् ३२,२१२,२२१,२३४
शॄ १७३,३२६,३४५,४८७
शै २६
शो १२५,२१७,२५८,२६०,२७८, २८१,३५०,
शोण् ६१,२८३
शौट् ६१
श्चुत् ६८,२३३
श्च्युत् ६८,२३३
श्मील् ३४
श्रण् १८३,२८५,३५५
श्रथ् १८२,१९०
श्रन्थ् ५९,१७६,३२५,५००
श्रम् १३४,२२३,२३१,३५८

श्रम्भ् ४५
श्रा ९७,३५६
श्रि १२,१९८,२१५,२६३,२६३,२६९, ३४२,३४३,३८४,४८६,४९९
श्री १७२
श्रु १७,३३,१९८,२१६,२३३,२४७, २७०,२८१,२८७,२९६,३०३, ३३४,३४३,३४९,३७०,३८५, ४५६,४६४,४६५,४८६,४८८,
श्रै २६,२५८
श्रोण् ६१
श्लाघ् ६२
श्लिष् २८,१३२,२०१,२३१, २६१,२९०
श्लोक् ६२,२८३
श्वठ् १८३
श्वभ्र् २५५
श्वल् ५१
श्वल्ल् ५१, २५५
श्वस् १०३, १०४, २४५, २५३
श्वि १४, १९८, २१३, २३३, २४५, २५३, २६३, २७४, २७५, ३१८, ३४४, ३८६, ३९४, ३९८, ४८७,
श्वित् ३०, २३४
श्विन्द् ५९
ष्ठिव् २८,२९,१२३,२२९,२५०
ष्वष्क् ४५
संग्राम् १९५,२७७
सच् ४५, ४६, ४९, ५०
सञ्ज् २७, ४३, १९९, २२०
सत्र् १९४
सद् २२, २८, ७०, १५५, १९०, २००, २२१, २३२, ३७५, ३७६, ३९७, ३९९,
सन् ३७, ३८, ७३, १६७, २३८, २४२, ३४३ ३८३, ३८५, ४१३, ४८६
सपर् ४४७
सभाज् १९४
सर्व् ३८
सस्ज् ३७, ३९
सह् ४५, ४७, १२४, १६९, १९०, २११, २२६, २४४, २८४, ३२१, ३८६,३८७,३९७,४०७
सा ३८१
साध् १४१, २००
सान्त्व् १८३
सि १३९, १४०, १७२ १४२, ४८६
सिच् २७, १४५, १९९, २१९, २३०, २३२, २३३, २४२, ३७५, ३७६, ३९५, ३९८, ४००
सिध् २७, ६३, १३२, २३१, २५०, २९७, ३५३, ३७५, ३८७
सिव् १२३,१६९,२२९, २५०, २८४, ३४३, ३८३
सु १७, २७, ८९, १३८, १३९, २४७, ३४३,३७०, ३७१, ४८६
सुख् १९५, ४४७,
सुह् १२४
सू २७,८५, १२८, १५३, २१०,२१६, २३९, ३०७, ३४६, ४८६

सूच् १९३, २७७, ३९२, ४००
सूत्र् १९५, २७७, ३९२
सूद् १८७
सूक्ष्र्य् ५२
सृ २१, २२, १९८, २१७, २३०, २९६, ३९८
सृज् १२८, १५४, १९६, २१२, २२०, २४८, ३०८, ३७८, ४९८
सृप् ७०, २००, २३२, ३९९, ४०९
सेनय् २७
सेव् २८, ६२, १९९
सै २६, २५९
सो २७, ४१, १२५, २१७, २५८, २६०, २७८, २८१, ३४३, ३५०, ३९६
स्कन्द् ६८, २००, २२१, २३३, ३४४, ३९४, ४२२, ४८७
स्कम्भ् १७९
स्कु १७२
स्कुन्द् ५९
स्कुम्भ् १७९
स्खद् ३५९
स्खल् २५४, ३५७
स्तन् १९२
स्तम्भ् २८, ७१, १७९, २३३, २५१ २८४
स्तिम् १२४
स्तीम् १२४
स्तु २७, ७९, ९०, १९९, १९८, २१६, २४७, २८७, २९६, ३०३, ३४३, ३४५, ३७०, ३७१, ३८१, ३९८, ४७९
स्तम्भ् २७
स्तुम्भ् १७९
स्तृ १४०, २३९, ४८७
स्तॄ १७२, २७०, ३४५, ३४६, ४८७
स्तेन् १९४
स्तोम् १९५
स्त्यै २६, २५८,
स्था २२, २३, २७, २१४, २३७, २३९, २५९, २६०, २७८, २७९, २८९, ३०७-८, ३४३, ३५०, ३८१, ३९६, ४१८, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४८८
स्थूल् १९४
स्नस् १२३
स्ना ९७, २५७, २७४, ३४४, ३५८, ३८१, ३९६
स्निह् १३३, २१०, २२६, २३१
स्नु ८९, १९८, २११, २१४, ४९७, ४९९
स्नुस् १२३
स्नुह् १३३, २१०, २२६, २३१
स्नै २५९
स्पन्द् ५९
स्पर्ध् ४३, ४१५,
स्पश् १८६, २७०, २७१
स्पृ १४१
स्पृश् १५४, २०१, २४५, २४९, २९३, ३०९, ३७८, ३९७

स्पृह् १९३
स्फाय् ४४, २७२, ३५२
स्फुट् ३१, ६८, १५१, २२६, २५५
स्फुर् १५१, १८४, २२७,२५५,३५२, ३६४
स्फुल् १५१, २२७, २५५
स्फूर्ज् ५३
स्मि १४, २१५, ३५१, ३७१, ३७२
स्मील् ३४
स्मृ २१, २३९, २४६, २७०,३०४, ३४५,३५६, ३८२,३९८, ४६४, ४८७
स्यन्द् ६५, ६६, २१२, २२१, २३४, २३६
स्यम् ३२४, ३९४, ३९८
स्रंस् ४५, २३४, २३५, ३९४,३९७, ४२२, ४८७
स्रम्भ् ४५ ४८, २३४
स्रिव् १२३, ४०८, ४२१
स्रु १७, १९८, २६३, २६९, २७०, २८१, २९६, ३६४,३८५, ४७१
स्वञ्ज् २७, ४७, १६९, १९९, २२०, ३२९
स्वद् १८९,३८७
स्वन् ३८, ४३, ३२४, ३५७
स्वप् १०३, १०४, २२२,२४९, २७२, ३१४, ३४४, ३८१, ३८६,३८६, ३८७, ३९४, ३९८,४२०,४८७, ४८९
स्वर् १९३
स्वर्द् ४३
स्विद् ३०, १३२, २२१, २३१,३८६, ३८७
स्वृ २१, २१०, २१६, २४६, ३०६, ३८३, ३८४, ४५६
हद् २००
हन् ४१, ७३, ७४, १९६, २०५, २०८,२२२,२४३,२५४,२७२, २८७, ३०९, ३१०, ३४६, ३५३, ३८०, ३९५, ३९७, ३९८,४११,४४८,४५५,४८६
हम्म् ३७, ३९
हय् ३७, २५३, ४०६
हर्य् ३८, ४०, २५३, ४२१
हल् ५१, २५५
हस् ६७,२५३, ४४८
हा ११४, ११५,१९६, २१४,२५८, ३०७, ३४३, ३५०, ३८१,३९६ ४१८, ४८८
हि १४०, २१५,२४६, ३६४,३९५, ३९८
हिंस् १६३, १६४, १९०, ३४४,४८८,
हिक्क् ५५
हिण्ड् ५९, ६०
हिन्व् ५७
हिल् १५०
हु १७, ७२, १०९, ११०, २१६, २४७,३३३, ३३५, ३४३,३४९, ४०६, ४८६
हुर्छ् ५३
हृ २१, १९८, २०८, २१७, २३९,

२४६, २८६,३०१, ३४५, ३४९, ३६२, ३७१, ४४९, ४५१,४८७, ५२६
ह्रणी ४४७
हृष् ३३, १३६, २३२, ३७८
हेठ् २८५
हेड् २८३, ३५५
हेष् ६२
ह्नु ८७
ह्मल् ५१, २५५, ३५५
ह्लस् ३७, ३८
ह्लाद् ४४
ह्री १११, ११२,१८४, २७३,३३३, ३३५, ३४९
ह्रीच्छ् ५२
ह्रेष् ६२
ह्लाद् ४४
ह्वल् ५१, २५५, ३५५
ह्वृ २१, २४६, ३०५, ३४५, ४८७
ह्वे २५, २१७, २३०, २३२, २३३, २७२,२७८, ३१५, ३४४, ३५०, ३८१, ३८६,३८७, ३९६,४०९, ४५७,४८७

अशुद्धशोधनम्

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
३	११	भदान्	भवान्
१२	६	क्षिये	क्षये
२३	७	अग्निम	अग्नि
२६	२४	पुप्	पुष्
३६	१२	अका।नषम्	अकानिषम्
४१	१६	इप्, गप्	इष्, गम्
५५	४	ऽन्तपक्त्यां	ऽन्नपक्त्यां
५६	२१	तिष्ठन्ति	तिष्ठति
७६	१६, २०	पा०	प०
८२	२७	समार्ते	समीर्ते
८४	६	ईशताम् (अस्पष्ट)	ईशताम्
”	१२	मर्त्थः	मर्त्यः
८७	११	अधाध्वम्	अधीध्वम्
९६	१२	वातये	वीतये
९८	८	यावापृथिवी	द्यावापृथिवी
१२८	१५	नैसद्	नैतद्
१४२	२७	श्नविकरणाः	श्नुविकरणाः
१४६	६	त्वातिचरामसि	त्वातिचृतामसि
१५०	४	स्नेह (तल् —)	स्नेहे (तिल्)
१६५	७	तञ्च्	तञ्चू
१६७	२०	ऋजुते	ऋणुते
२११	२६	कृत-चृद्	कृत-चृत
२३६	६	अस्त्रम्भिषि	अस्रम्भिषि
२४६	टि० १	स्वृ सेट्	स्वृ अनिट्
२५८	२३	स्ट्यै	ष्ट्यै

यहाँ दिये हुए रूपों में षत्वादि-रहित ‘अस्त्यासीत्’ आदि रूप शुद्ध जानें।

२६१	१२	अघृक्षत	अघृक्षन्त
२७२	टि० २	लघु ‘उ’ को	लघु ‘उ’ को दीर्घ।
४६४	टि० १	दाणश्चतुर्थ्यर्थे	दाणश्च सा चे-च्चतुर्थ्यर्थे

टिप्पणाभावपूर्तिः

अनवधानवश कुछेक अपेक्षित टिप्पण रह गये हैं। उन्हें यहाँ दिया जाता है और कुछ एक का अस्थान में संनिवेश हुआ है उन का उचित स्थान निर्दिष्ट किया जाता है—

पृ० १२७. आजनोर्जा (७।३।७९)—यह पृ० १२५ पर चाहिये।

„ १२५. ऋत इद् धातोः (७।१।१००)—यह पृ० १२४ पर चाहिये।

„ १९१. के नीचे धून्प्रीञोर्नुक् (वा०) पढ़ें।

„ २६९. स्रवति-शृणोति-आदि सूत्र पृ० २७० के नीचे चाहिये।

पृ० २९० के नीचे भञ्जेश्चिणि (६।४।३३) पढ़ें।

„ ३०५ के नीचे सन्लिटोर्जेः (७।३।५७)—यह टिप्पण १ के रूप में पढ़ें।

„ ३१६ के नीचे न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् (३।१।३७) विधि सं० ३४५ के सम्बन्ध में पढ़ें।

„ ४४६ के नीचे कण्ड्वादिभ्यो यक् (३।१।२७) पढ़ें।

„ ४९० तपोऽनुतापे च (३।१।६५)—यह पृ० ४९९ के नीचे चाहिये।